राष्ट्रपति

डा० पट्टाभि सीतारमैया

का

जीवन चरित्र

लेखक—
श्री भालचन्द्र शर्मा

प्रथम संस्करण] दिसम्बर १९४८ [मूल्य अढ़ाई रुपया

समर्पण

महीयसी

पुण्यशीला, यशस्विनी

राष्ट्रपति—डाक्टर पट्टाभि

की

पूजनीया स्वर्गीया माता के

चरण-कमलों मे

उन्हीं के यशस्वी, प्रतापी, महान् पुत्र के

कीर्ति-कलापोंकी

यह—पुष्पाञ्जलि

सादर समर्पित।

—लेखक

प्रकाशक—
भालचन्द्र शर्मा
इन्द्रचन्द्र चोरड़िया
जयभारत प्रकाशन मंदिर
४, राजा उडमंड स्ट्रीट
कलकत्ता ।

दो शब्द

एक युगके पहले भारतके जिस महान् नररत्नसे मेरा साक्षात्कार हुआ था, मुझे स्वयं स्वप्नमें भी पता नहीं था कि आज देशकी उसी महान् विभूतिका चरित्र "राष्ट्रपति" के जीवनके रूपमें लिखनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा। एकाएक ही गत १३ नवम्बरको प्रातः दिल्लीके कान्स्टिच्यूशन हाउसके एक कमरेमें विचार उत्पन्न हुआ कि "नव-निर्वाचित डा० पट्टाभिका जीवन चरित्र प्रकाशित कर राष्ट्रके सम्मुख रखनेका अवसर प्राप्त हो सके तो उनसे प्रार्थना की जाय।" उसी दिन डाक्टर साहबसे साधारण भेंटके समय मैंने निवेदन किया। उसीके अनुसार १८ नवम्बरको डाक्टर साहबका आदेश प्राप्त हुआ। १९ को मैं प्रफुल्लित चित्तसे जीवन प्रकाशित करनेका दायित्व लेकर कलकत्ता रवाना हो गया।

इस अत्यल्प समयमें डाक्टर पट्टाभिकी जीवनीके पन्ने यत्र-तत्रसे संकलित कर मैं लिपिवद्ध कर सकनेमें किस अंश तक सफल हुआ हूँ, यह तो आप नव-राष्ट्रके निवासी ही बतलायेंगे।

हाँ, यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि गत २२ नवम्बरसे जीवनीके विषयमें कलम उठाना और उसके लिये सारे साधनोंको जुटाना एक प्रकारसे मेरे जीवनमें बड़ा "रिस्क" लेना था। इस "रिस्क" में भगवानकी प्रेरणा और अनुकम्पा सन्निहित है। कुछ वर्ष पहले एक छोटी-सी जीवनी संपादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी की लिख चुका था। आज इस द्वितीय प्रयासमें डाक्टर साहबके सुपुत्र श्री राधाकृष्णका आभारी हूँ, जिन्होंने जीवनी सम्बन्धी साहित्य

तथा चित्र प्रदान करनेमें औदार्य प्रकट किया है। अति शीघ्रतामें पुस्तक प्रकाशित की गयी है, कहीं-कहीं प्रूफकी भूलें हुई हों तो पाठक इस त्रुटिके लिये क्षमा करें।

डाक्टर पट्टाभि जैसे उज्ज्वल, परखे हुए नररत्नकी बहुमुखी प्रतिभा, देश, समाजके लिये किये गये कार्य-कलापोंका ब्योरा, विस्तृत रूपसे इस अत्यल्प समयमें प्रस्तुत करना मेरे लिये असम्भव था। अतः कुछ पृष्ठ लिखकर इस चरित्रको संक्षिप्त रूपमें राष्ट्रके सम्मुख रखा है। राष्ट्र इसे पढ़े और समझे कि एक दरिद्रनारायण-परिवारमें उत्पन्न हुआ बालक गरीबीसे संघर्ष करता हुआ किस भाँति आज राष्ट्रपतिके आसन पर आसीन है। नव-भारतके भावी संचालक युवकोंको इस जीवनीसे बहुत कुछ सीखकर राष्ट्र-निर्माणके कार्यमें लगना है।

इस जीवनीके संकलनमें मैंने डाक्टर पट्टाभि रचित Feather and Stone तथा The Economic conquest of India or the British Empire Ltd. से कुछ अंश लिये हैं, उसके लिये कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

इस अत्यल्प समयमें कार्योंमें व्यस्त रहने पर भी पश्चिम बंगालके गवर्नर माननीय डा० कैलासनाथ काटजूने इस पुस्तककी भूमिका लिखकर जो स्वाभाविक उदारताका परिचय दिया है, उसके लिये मैं कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं।

भाई इन्द्रचन्द्रजी चोरड़िया तथा भाई धर्मचंदजी सरावगीके सहयोग के लिये धन्यवाद देकर अपने दो शब्द समाप्त कर रहा हूँ।

—भालचन्द्र शर्मा

भूमिका

गवर्नमेंट हाउस,

कलकत्ता ।

जयपुरमें होनेवाले कांग्रेसके ऐतिहासिक अधिवेशनके निर्वाचित अध्यक्ष डा० पट्टाभि सीतारमैया राष्ट्रके एक विश्वसनीय नेता हैं। उन्होंने अपना सारा जीवन देश-सेवामें बिताया है। पं० भालचन्द्र शर्माने अपनी पुस्तकमें डा० पट्टाभिके जीवनकी प्रमुख घटनाओंका सुन्दर विवरण दिया है। मुझे निश्चय है कि यह पुस्तक बहुत अधिक पाठकों द्वारा बड़ी उत्सुकताके साथ पढ़ी जायेगी। पिछले वर्षोंमें डा० पट्टाभिने तन-मनसे देशी रियासतोंकी जनताके कार्यमें अपना सारा समय अर्पित कर रखा था। देशी रियासतोंमें आज जैसी जागृति हम पाते हैं, इसका बहुत अधिक श्रेय उन्हींके प्रयत्नोंको है, जैसा कि उन्होंने हाल में स्वयं ही कहा है, कि हैदराबादका प्रश्न हल हो जानेसे अपना ध्यान समग्र भारतके अधिक विस्तृत राजनीतिक क्षेत्रकी ओर लगाना ठीक समझा है। भारतको इन कठिन दिनोंमें कांग्रेसके अध्यक्ष-पदपर उन जैसे विशाल अनुभववाले और पारखीकी आवश्यकता है। कांग्रेस अपना नवीन अध्याय आरम्भ कर रही है। स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका प्रधान उद्देश्य पूरा हो गया है। अब इसे अपना ध्यान रचनात्मक कार्योंकी ओर लगाना है। कांग्रेस संगठन और केन्द्रीय सरकारके भारतीय मंत्रिमण्डलके बीचके सम्पर्कको एक ओर छोड़ दें, तो यह स्पष्ट है कि केवल कांग्रेस ही एकमात्र संस्था है, जो महात्मा गांधीके सुप्रसिद्ध अठारह विषयोंयुक्त कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेमें सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है। साथ ही कांग्रेस ही एक संस्था है, जो इस महान् कार्यको आगे बढ़ानेके लिये जनतामें अगणित

उत्साह तथा सर्वप्रिय जागृति पैदा कर सकती है। सरकारी सहायताका उपयोग किया जा सकता है, किन्तु प्रेरणा, आवश्यक गतिशीलता और अग्रगामी होनेका कार्य केवल कांग्रेस ही कर सकती है।

रचनात्मक क्षेत्रमें हजारों स्त्री पुरुष कार्य्यकर्त्ता अपने सेवा-भावके द्वारा जनतामें उत्साहकी ज्योति तथा स्फूर्त्तिकी अग्नि प्रज्वलित कर, केवल कांग्रेस संगठनके द्वारा ही जन-साधारणका ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। मैं ससम्मान कह सकता हूँ कि ऐसे कठिन कार्यके लिये डा० पट्टाभि सीतारमैया पूर्ण रूपेण सुयोग्य हैं और आगेके लिये हम आशा कर सकते हैं कि उनके नेतृत्वमें हमारे श्रम शीघ्र सफल होंगे।

कैलाश नाथ काटजू

कलकत्ता

२ दिसम्बर १९४८ (गवर्नर पश्चिमी बंगाल)
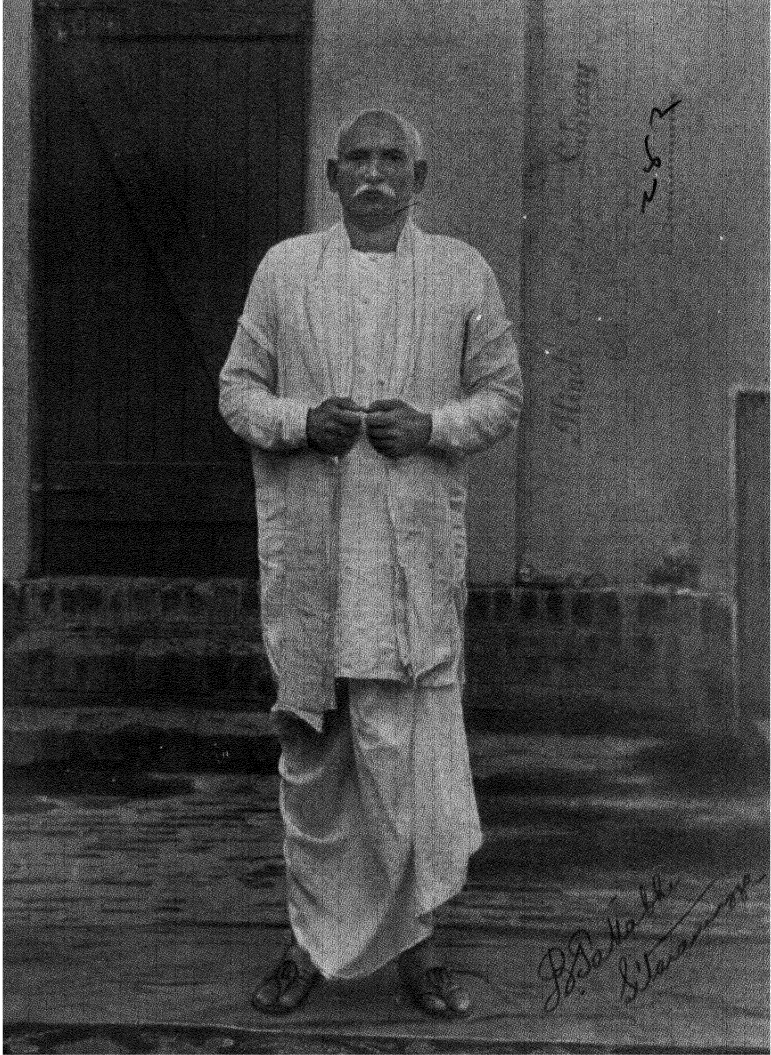
राष्ट्रपति डा० पट्टाभि सीतारमैया (जयपुर कांग्रेसके अध्यक्ष)

जयपुर कांग्रेसके अध्यक्ष
डा० पट्टाभि सीतारमैया

यह बड़े ही हर्षकी बात है कि जयपुरमें होनेवाले राष्ट्रीय कांग्रेसके आगामी महत्वपूर्ण अधिवेशनके अध्यक्ष आन्ध्र प्रांतके सुप्रसिद्ध गांधी-भक्त नेता डा० भोगराज पट्टाभि सीतारमैया निर्वाचित हुए हैं। इस अधिवेशनका महत्व कई दृष्टियोंसे बहुत अधिक है। उसे असाधारण भी कहा जाय, तो कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि यह अधिवेशन एक तो स्वतन्त्र भारतमें प्रथम बार ही हो रहा है और दूसरे इसके पहले किसी देशी रियासतके भीतर कांग्रेसने अपना वार्षिक अधिवेशन कभी नहीं किया था। जिन डा० पट्टाभिने गत १५ वर्षोंसे भारतकी देशी रियासतोंके निवासियोंके स्वतन्त्रताके आन्दोलनोंमें विशेष रूपसे योग दिया और अपना सारा समय उन्हींके लिये अर्पित कर रखा था, उनका एक देशी रियासतके भीतर होनेवाले अधिवेशनके लिये अध्यक्ष चुना जाना सर्वथा उचित एवं उपयुक्त ही हुआ है। अपने इस निर्वाचनके सम्बन्धमें जो कुछ स्वयं डा० पट्टाभिने मद्रासमें किये गये स्वागत-समारोहके अवसर पर कहा है, उससे अधिक मनोरंजक ढंगसे और किसीके लिये कहना कदाचित् संभव न होगा, इसलिये उनका जीवन-चरित्र लिखना आरम्भ करनेके पहले हमें उसका उल्लेख कर देना प्रासंगिक एवं उचित जान पड़ता है। उन्होंने स्वागतके लिये धन्यवाद देते हुए एक खासा लम्बा व्याख्यान दिया था, पर उसका उतना ही अंश यहां उद्धृत करना उपयुक्त होगा, जितना उनके इस निर्वाचनसे सम्बन्ध रखता है।

डा० पट्टाभिने कहा,—"मैं अपने समस्त जीवनमें कभी पदके लिये लालायित नहीं हुआ। जब श्री राजगोपालाचारीने प्रथम बार १९३७

ई० में और पुनः १६३६ ई० में मिनिस्ट्रीमें सम्मिलित होनेके लिये मुझे निमन्त्रण दिया था, मैंने स्वीकार नहीं किया। मेरी इस अस्वीकृतिको लेकर ही अभी उस दिन गवर्नर-जेनरलने हंसीमें मुझे सुना कर यह कहा था,—'हो सकता है कि यदि कांग्रेसका अध्यक्ष-पद आपको दिया जाने लगे, तो उसे भी आप अस्वीकार कर सकते हैं।' पर बात तो यह है कि मैं किसी प्रकारका संकट नहीं खड़ा करना चाहता। मुझे इसका पता था कि समस्त दक्षिण-भारतको यह सोच कर वेदना अनुभव हो रही थी कि यद्यपि कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिये सन् १६३६ ई० में मैं उम्मेदवार था, पर पीछे मैं भुला दिया गया। मैंने कोई शिकायत नहीं की। इस बार मैंने दिल्लीमें कतिपय मित्रोंसे परामर्श किया, किन्तु जब हैदराबादके आत्म-समर्पणका तार मिला, तभी मैंने यह अनुभव किया कि अब रियासतोंके क्षेत्रमें मेरा कार्य समाप्त हो गया और अब मैं अधिक व्यापक-क्षेत्रमें कार्यरत हो सकता हूं। निर्वाचनके पश्चात् मुझे लगा कि यह अच्छा हुआ, जो निर्वाचन निर्विरोध नहीं हुआ। निर्विरोध निर्वाचन तो गुजाराके लिये मिलने वाले भत्तेकी भांति होता है, क्योंकि उसके लिये उस आदमीको कुछ काम तो करना नहीं पड़ता। यह विचित्र बात है कि कांग्रेसके इतिहासमें केवल दो ही निर्वाचन जो लड़े गये, उन दोनों ही में मैं एक उम्मेदवार रहा—१६३६ ई० में तो १६६ वोटोंसे हार गया था और अबकी ११४ वोटोंसे जीत गया हूं। इससे गीताकी 'सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वा' वाली शिक्षाका मर्म भली भांति समझमें आ जाता है।"

एक और वक्तव्यमें डा० पट्टाभिने कहा है,—"मैं चाहता था निर्वाचनमें वोट मांगनेके लिये दौड़ न हो और न वाद-विवाद ही। वाद-विवाद तो नहीं हुआ, लेकिन मुझे भय है कि यही बात मैं वोट-भिक्षाके विषयमें नहीं कह सकता। निर्वाचन आदर्शके आधार पर लड़ा गया। व्यक्तिगत कारणोंको लेकर नहीं। गांधीवादके झंडेको ऊँचा रखनेका हम उद्योग करेंगे। मैं सर्वप्रथम श्री राजेन्द्र बाबूको उनके उस कठिन

उद्योगके लिये धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जो उन्होंने निर्विरोध निर्वाचनके लिये किया था। श्रीशंकरराव, प्रफुल्ल बाबू और कृपलानीजीको धन्यवाद है कि उन्होंने राजेन्द्र बाबूके कहनेसे अपनी उम्मीदवारी लौटा ली। निर्वाचनको लेकर जो प्रादेशिक कांग्रेस-कमेटियोंमें किसी प्रकारकी अप्रिय बात नहीं हुई, इसके लिये उनको भी धन्यवाद देना चाहिये।"

दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-संघकी ओरसे जो आयोजन डा० पट्टाभि को बधाई देनेके लिये हुआ था, उस अवसर पर सभाके मंत्री श्रीयुक्त सत्यनारायणने उनका गुण-गान करते हुए यह कहा कि डा० पट्टाभि उन महानुभावोंमें हैं, जिन्होंने दक्षिणमें हिन्दुस्तानीके आन्दोलनको पहले-पहल आगे बढ़ाया था। इन्होंने मसलीपट्टम्के राष्ट्रीय कालेजमें बहुत वर्ष पहले हिन्दुस्तानीको जारी किया था। सभाकी ओरसे दिये गये अभि-नन्दन-पत्रके उत्तरमें हिन्दीमें भाषण करते हुए डा० पट्टाभिने कहा कि महात्मा गांधीके रचनात्मक कार्यक्रममें हिन्दुस्तानीको बड़े महत्वका स्थान प्राप्त है। मैं हिन्दुस्तानी जानता हूं, इस भाषाको मैंने सीखा है और हिन्दीके आन्दोलनके साथ अपना बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखा है। मुझे बताया गया है कि मेरे निर्वाचन सम्बन्धी प्रचारके समय बिहारमें एक स्थान पर कुछ मित्रोंने यह विचार प्रकट किया कि श्री पट्टाभिको कांग्रेसका अध्यक्ष निर्वाचित करनेसे राष्ट्र-भाषाके हितको हानि पहुँचेगी और हिन्दीका ज्ञान न रखनेके कारण कांग्रेसके अध्यक्ष बन कर वे उसके मामलोंकी व्यवस्था ठीकसे न कर सकेंगे। किन्तु मेरे मित्र श्री सत्य-नारायणने तुरन्त ही उन्हें बता दिया कि मुझे दक्षिणमें हिन्दुस्तानीके आन्दोलनमें डा० पट्टाभिके परस्पर सम्बन्धका पूरा पता है और उनका हिन्दीका ज्ञान, विभिन्न भाषा-भाषी प्रान्तोंके लोगोंको संयुक्त बनानेमें सहायक होगा। अन्तमें डा० पट्टाभिने कहा कि देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक प्रान्त-प्रान्तके बीच बोलचाल और व्यवहारका हिन्दुस्तानी ही साधन होगा।

जन्म और बाल्यकाल

डा० पट्टाभिका जन्म मद्रास प्रान्तके पश्चिमी गोदावरी जिलेके मुख्य नगर एलोरसे दस मील दूरके ग्राम गुंडूगोलानूमें सन् १८८२ ई० में २५ नवम्बरको हुआ था। उनके माता-पिता बहुत साधारण स्थितिके आदमी थे, इसलिये उनके जन्मके समय उस प्रकारकी कोई धूमधाम नहीं थी, जैसी किसी और सन्के इसी नवम्बर मासमें पं० मोतीलाल नेहरूके घरमें जन्म लेनेवाले जवाहरलाल नेहरूके जन्मके अवसर पर देखी गयी। बालक पट्टाभि अपने माता-पिताकी चार सन्तानोंमें (दो बहिनों और दो भाइयोंमें) तृतीय थे। इन्हें अपने पिताका सुख अधिक समय तक देखनेको नहीं मिला और जब ये दो-तीन वर्षके ही थे, तभी वे इन्हें छोड़कर इस संसारसे उठ गये। गरीबीकी मारसे पीड़ित इनकी माताजीके दुर्बल कंधों पर ही इनके भरण-पोषणका सारा भार आ जानेसे उनकी जैसी अवस्था हो गयी थी, उसकी कल्पना सरलतासे कर ली जा सकती है। इसके लिये उन्हें निरन्तर कठिन श्रम करना पड़ता था। इनके चचासे माताजीको साढ़े सात रुपये मासिककी जो सहायता प्राप्त होती थी, उससे उनकी चिन्ता तो कैसे मिट सकती थी, इसीसे उनकी मेहनती माताजीको भोजन बनानेसे लेकर नौकरके सारे कार्य-भार ग्रहण कर किसी प्रकार अपने चारों बच्चोंका भरण-पोषण करना पड़ता था। नित्यका काम चलानेके साथ ही माताजी प्रति मास आठ आनेके हिसाबसे बचा भी लिया करती थीं और इस बचतसे उन्होंने जो छत्तीस रुपये बचा पाये थे, आगे चलकर उन्हींसे मैट्रिक्युलेशनमें पढ़ाई जानेवाली पुस्तकें खरीदी गयी थीं। बालकपनसे ही पट्टाभि बड़ी कुशाग्र बुद्धिके विद्यार्थी थे, इसलिये अपने परिश्रम और लगनके कारण वे अपनी कक्षामें सदा प्रथम रहते थे। माताके ऊपर परिवारके पोषणका जो भार था वह कठिन था, तो भी वे धैर्य एवं साहसके साथ उसे बहन करती थीं, इस तरह अपने बच्चोंकी शिक्षाकी व्यवस्था पहले तो अपने ही गाँवमें और पीछे एलोरमें करती रहीं। जीवन-निर्वाहका खर्च उन दिनों

बहुत कम था, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु पैसा तो तब बहुत कम था। बालक पट्टाभि जैसे कुशाग्र बुद्धिवाले थे, वैसे ही बचपनसे उद्यमी भी एक ही थे। अपनी बुद्धिके कारण वे बराबर छात्रवृत्ति प्राप्त करते थे, जिससे उन कठिन दिनोंमें कुछ कम सहायता नहीं पहुंचती थी। आज जीवन-निर्वाहका खर्च जिस तरह बेहद बढ़ गया है, उसी तरह रुपयेका मूल्य बेतरह घट गया है। इससे तो इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती कि इतने थोड़े पैसोंसे डा० पट्टाभिकी माताजी किस प्रकार अपने चार-बच्चोंका पालन करती हुई उनकी शिक्षाकी व्यवस्था कर पाती थीं और उनके व्याह-शादीका काम निकाला करती थीं। परन्तु बाल्यावस्थामें इस प्रकार गरीबीका जीवन बितानेके कारण सुयोग्य माताजीने अपने बच्चोंमें नियमवद्धताका सद्गुण उसी अवस्थामें कूट-कूट कर भर दिया था, जब बच्चोंका जीवन चाहे जिस ओर ढाला जा सकता है।

शिक्षा-दीक्षा

१८९७ ई० में पट्टाभिको कालेजकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये मसली-पट्टम चला जाना पड़ा, जो कृष्णा ज़िलेका प्रधान नगर था। वहां इन्होंने एफ० ए० प्रथम श्रेणीमें पास किया। जब वे एलोर हाई स्कूलके प्रिंसिपलका सिफारिशी पत्र लेकर नोवल कालेजके प्रिंसिपलके पास पहुंचे, तब इतने अल्पवयस्क थे कि एफ० ए० क्लासमें पहले-पहल घुसनेके समय अध्यापक श्री कविकोंडल ब्रह्मय्याने चतुर्थ कक्षाकी ओर जानेको कह दिया और अपनी उस छोटी अवस्थामें पट्टाभि वस्तुतः उसीके योग्य जंचते भी थे। परन्तु कालेजके प्रिंसिपल रेवरेंड क्लार्कने उन्हें कालेजमें भर्त्ती कर छात्रवृत्तिकी भी व्यवस्था कर दी थी। यहां इसी नगरमें उन्होंने अपने अनेक मित्र बनाये और सच पूछा जाये तो उनके जीवनकी नींव भी यहीं पड़ी। वे अपने प्रोफेसरों और मुख्यकर श्री आर० वेंकटरत्नम नायडूके बड़े प्रिय शिष्य थे। पढ़ने-लिखनेमें कुशाग्र-बुद्धि होने पर भी पट्टाभिकी खेलकूदमें अभिरुचि कम ही थी। जो तीन पुरुष आगे चलकर

आंध्र प्रदेशके जीवनमें क्रान्ति उपस्थित करनेवाले सिद्ध हुए, उनमें परस्पर सम्पर्क यहीं पर स्थापित हुआ, जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। वे थे सर्व श्री कोपल्ली हनुमंतराव (जो पीछे एम० ए० बी० एल० हुए थे), मुतनुरी कृष्णराव ('कृष्णा'-पत्रिकाके सम्पादक) और पट्टाभि। वे दिन थे, जब भारतमें राष्ट्रीयताकी लहर ऊँची उठ रही थी और डा० पट्टाभि पर सर आर० वेंकटरत्नम् नायडू का प्रभाव अधिकाधिक पड़ रहा था। इस सम्बन्धमें स्वयं श्री नायडूके मुँहसे सुनिये—

"हर्षकी बात है कि सर वेंकटरत्नम् नायडू गारूकी सत्तरवीं वर्षगांठ ८ अक्टूबरको मनायी जानेको है कहावत है कि महापुरुष एक साथ जन्म ग्रहण करते हैं। प्रो० ब्लेकीने कहा था कि तीन महान् आत्माओं ने १८१६ ई० में जन्म लिया था, जिनमें एक महारानी विक्टोरिया, दूसरे ग्लैडस्टने थे और तीसरा हूं मैं। अब अपनी त्रयी बनानेके लिये सौभाग्यसे मेरे आत्म-प्रशंसक बननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कारण, अक्टूबरका महीना महान् पुरुषोंका महीना जान पड़ता है। तीन महान् हैं—डा० बीसेंट, सर आर० वेंकटरत्नम् नायडू और मोहन दास कर्मचन्द गांधी। तीनोंमें सबसे ज्येष्ठ सर आर० वेंकटरत्नम् नायडू थे। अब जब मैं वयसका लेखा लगाता हूं, तो देखता हूं कि मैं नायडू गारूसे अठारह वर्ष छोटा हूं। नामके साथ पदवी लगाना मैं जान-बूझकर छोड़ता हूं, क्योंकि दिन पर दिन उनकी संख्या बढ़ती जाती है।...जब वे तैंतीस वर्षकी अवस्थाके थे, तभीसे उनका सुन्दर साहसप्रद प्रभाव हमारे जीवनके उस कालपर पड़ रहा था, जो जीवनका निर्माणकाल होता है। अब मैं अनुभव करता हूं कि यदि हमारे आचरणमें कुछ भी सत्यपरता एवं अहिंसा है, तो इनका बीजारोपण उन्हीं सुन्दर दिनोंमें हुआ था, जब गुरु और शिष्य एक समान भारतके पुनरुत्थानके लिये प्रयत्न-शील हो रहे थे।...यदि आज गुरु और शिष्य दोनों एक दूसरेसे भिन्न स्थानों पर देखे जाते हैं—एक तो सरकारी सेक्रेटरियटके एक प्रतिष्ठित पद पर और दूसरा उसी सरकारके जेलखानेके भीतर, तो भी शिष्य सदाकी भांति गुरुकी श्लाघा और प्रशंसा करता है।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नायडू गारू और पट्टाभिके बीच आदर्श प्रेम था। नायडू गारूकी उन दिनों सार्वजनिक कार्योंमें विशेष अभिरुचि थी और वर्षके अधिकांश भागमें पढ़ानेकी ओर उनका ध्यान कम ही रहता था। इस तरह अन्य दिनोंमें तो कालेजमें पढ़ाईके साधारण घंटोंमें नित्यकी घटनाओं पर ही चर्चा चला करती थी, पर जब वर्ष समाप्तिके निकट पहुँचता था, तब वे विद्यार्थियोंको परीक्षाके लिये तैयार करनेमें शीघ्रता करते देखे जाते थे। पट्टाभि, नायडू गारूके इस स्वभावकी प्रायः खिल्ली उड़ाया करते थे और गारू नायडूका उनकी उस हँसीमें मनोरंजन होता था। कालेज दिवसके एक अवसर पर पट्टाभिके विनोदपूर्ण कथनके उत्तरमें नायडू गारूने यों कहा था—"यदि अपनी निर्बलताओं और त्रुटियोंको रखते हुए भी मैं आंध्रका एक सबसे बड़ा वक्ता (पट्टाभि) तैयार कर सकता हूँ, तो मुझे अपने अतीत पर पछतानेकी आवश्यकता नहीं है और वह मेरे परिश्रमका परिणाम है।"

पट्टाभिने दो वर्ष तक नोबुल कालेजमें अध्ययन करके, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एफ० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास की। गाँवके किसी मुंसिफने उन्हें साठ रुपये सहायतार्थ दिये, जिन्हें लेकर डा० पट्टाभि आगे की शिक्षा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे मद्रास पहुंचे, वहां साढ़े सात रुपये मासिक तो भोजनके लिये देने पड़ते थे, कमरेका किराया पौने चार रुपया था और तीन रुपये बत्तीके लगते थे। इसी प्रकार चार महीने बीत जानेपर तिमाराजू शिवरावकी बीस रुपये मासिककी छात्र-वृत्ति मिली। इस छात्रवृत्तिकी प्राप्तिके लिये ये शर्तें थीं—(१) छात्र अठारह वर्षकी वयसके पहले एफ० ए० की परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हो (२) उसे बी० ए० क्लासमें सायंस (विज्ञान) लेकर पढ़ना होगा (३) इस छात्रकी अन्य आय पाँच सौ रुपये वार्षिकसे अधिक न हो। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पट्टाभि ये तीनों शर्तें पूरी करते थे। क्रिश्चियन कालेजके विद्यार्थियोंको स्पेशल तौरपर जांचकी परीक्षामें भी उत्तीर्ण होना पड़ता था और उसमें भी पट्टाभि प्रथम आये थे, जिससे वे एक और छात्र-वृत्तिके अधिकारी हुए।

परन्तु दो छात्रवृत्तियां एक समयमें नहीं ली जा सकती थीं, इसीसे उन्होंने शिवराव छात्रवृत्ति लेनेका ही निश्चय किया।

मद्रासका शिक्षा-काल

पट्टाभि जब आगेकी अपनी शिक्षा जारी रखनेके लिये मद्रास जाने लगे थे, तब वहांके क्रिश्चियन कालेजके मेसर्स स्किनर एण्ड रसेलके नाम उन्हें सिफारिशी चिट्ठी देते समय पट्टाभिसे यह प्रश्न किया था कि भविष्यमें आपका विचार कौन-सा काम करनेका है? पट्टाभिने कहा कि मेरा विचार एल० टी० करके अध्यापक बननेका है। इस पर रेवरेंड क्लार्कने उनसे यह वचन ले लिया कि यदि टीचरी ही करनी हो, तो नोबुल-कालेजमें करना अच्छा होगा। साथ ही प्रिंसिपल क्लार्कने उनसे यह भी कहा—"मुझे मालूम हुआ है कि आपने ईसाई मतकी परम्परागत कक्षाओं और प्रवृत्तियोंको हृदयंगम कर लिया है और मि० ब्राउनने मुझे बताया है कि आप करीब-करीब एक ईसाई बालककी तरह समझे जाते हैं।" उन्हें तुरन्त कड़ाकेका उत्तर मिला—"यह सच है कि बाइबिलका अध्ययन करनेमें मैंने कुछ अनुराग दिखाया है, लेकिन और सब बातें गलत हैं।" मि० क्लार्कको पट्टाभिका अभिप्राय समझते देर नहीं लगी और उन्होंने दूसरी बातोंकी चर्चा छेड़ दी। आगे चलकर पट्टाभिने यद्यपि अध्यापकीको अपना पेशा नहीं बनाया तो भी रेवरेंड क्लार्कको दिये हुए वचनको वे नहीं भूले थे और १६०८ से १६१० तक उनके कालेजमें फिजियोलोजी (जीवन तत्व) के प्रोफेसर रहकर काम किया था। पट्टाभिने मद्रासके क्रिश्चियन कालेजसे बी० ए० पास किया था। यह परीक्षा भी उन्होंने इतने अच्छे नम्बरोंसे पास की थी कि फिजिक्स (विज्ञान) की एम० ए० की शिक्षा प्राप्त करनेके लिये उन्हें पचीस रुपये मासिककी एक छात्रवृत्ति मिली। परन्तु पट्टाभिकी एम० ए० बननेकी अपेक्षा डाक्टरी पढ़नेकी अधिक रुचि थी, इसलिये उन्होंने वह छात्रवृत्ति स्वेच्छासे फिलासफी (दर्शन) के एक विद्यार्थीको दे दी।

विवाह और डाक्टरीका अध्ययन

इसी समय पट्टाभिकी योग्यतापर मुग्ध हो कोकनाड़ाके आनरेबुल गञ्जम वेंकटरत्नम् पान्तुलूने अपनी पुत्री कुमारी राजेश्वरम्माका विवाह उनके साथ कर दिया। श्रीयुक्त पांतुलू ठिंगने कदवाले एक ख्यातनामा वकील थे और सदा रैयतका पक्ष लेकर मुकद्दमे लड़ा करते थे। सीधेसादे तो इतने थे कि एक ग्रामीणसे जँचते थे। मिंटों—मार्ले शासन-सुधारोंके पूर्व वे मद्रास लेजिसलेटिव कौंसिलमें सरकार द्वारा मनोनीत एक मेम्बर थे। भूमिके लगान विषयक प्रश्नोंकी ओर विशेषरूपेण उनका ध्यान रहता था और इस विषयका विस्तृत अध्ययन भी उन्होंने किया था। उन्होंने सोचा कि इस विषयपर अधिक ध्यान देनेके लिये कोलाहलपूर्ण नगरकी अपेक्षा किसी ग्राममें समय व्यतीत करना अधिक सुविधाजनक होगा, इसीसे वे अपना अधिकांश समय पासके एक ग्राममें व्यतीत किया करते थे। परंतु पांतुलूजी प्रायः 'हिन्दू' पत्रमें लेख दिया करते थे, जो जनतामें बड़े चावसे पढ़े जाते थे। और उन दिनों कांग्रेसके भीतर रैयतकी समस्या पर सम्यक्‌रूपेण बोलनेकी क्षमतावाले दो ही व्यक्ति समझे जाते थे—एक तो श्री रमेशचन्द्रदत्त और दूसरे वेंकेटरत्नम् पांतुलू थे। ऐसे ख्यातनामा पांतुलूजीके दामाद बनकर पट्टाभिने उनसे देशभक्ति और सेवाकी भावना भरपूर ग्रहण की। पांतुलूजीका पुस्तकालयका संग्रह बहुत सुन्दर था और परिश्रमी दामादने उससे पूरा लाभ उठाया। पट्टाभि एम० ए० बन जाना चाहते थे या यदि धन मिल सके, तो एडिनबरा जाकर डाक्टरी परीक्षा पास करनेकी इच्छा रखते थे। लेकिन उनके श्वसुर पांतुलूजी स्वयं एक वकील थे और अपने दामादको भी बी० एल० बना देखना चाहते थे। किन्तु पट्टाभिकी रुचि कानून पढ़नेके सदा ही विरुद्ध रही और उनकी इच्छा डाक्टर बननेकी थी। इसलिये अपने ससुरकी सहायतासे उन्होंने मद्रासके मेडिकल कालेजमें डाक्टरी पढ़ी। वे मेडिकल कालेजमें १६०० के जुलाई महीनेमें भर्त्ती हुए और वहींसे १६०६ ई० में एम० बी० बी० एस० की डिग्री प्राप्त कर डाक्टरी करनी शुरू कर दी।

डाक्टरीका प्रारम्भ

डाक्टर बन जानेपर पट्टाभि महोदयके सामने प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि अब किस प्रकार जीवन-क्षेत्रमें अग्रसर होना चाहिये ? डा० पट्टाभिके मित्रों और सम्बन्धियोंकी यह इच्छा होनी स्वाभाविक थी कि वे सरकारी नौकरी स्वीकार करें। यदि वे ऐसी नौकरी करना चाहते, तो तुरन्त ही एसिस्टेंट सर्जन बन सकते थे और उन दिनों ऐसे सर्जनको ढ़ाई सौ रुपये मासिक प्राप्त होते थे। डा० पट्टाभिको बाल्यकालमें अपने पिताजीकी मृत्यु हो जानेसे वे दिन देखने पड़े थे, जब उनकी माताजीको नित्य चक्की चलानी पड़ती थी, जिससे पिसाई न देनी पड़े। उन दिनों माताजीको एक साथ ही दोपहर, संध्या और प्रातःकालका भोजन तैयार करना पड़ता था। वे भोजनका एक कण भी खराब नहीं होने देती थीं। खराब करनेके लिये वहाँ रखा ही क्या था ? अवस्था इतनी बिगड़ी हुई थी कि बच्चोंको अपने पिताका देहान्त हो जानेके पश्चात् तेरह वर्ष तक यह नहीं मालूम हुआ कि शाक क्या होता है ! दूध और दहीका तो उन्हें दर्शन ही नहीं होता था ! घीका भी नाम ही होता था और माताजी कटोरीमें चम्मच खटखटाकर सन्तोष कर लेनेकी सामग्री जुटा दिया करती थीं ! पहिननेको वर्षों तक लंगोटीके सिवा और कुछ प्राप्त नहीं था। ऐसी गरीबीके दिन जिस व्यक्तिको वर्षों काटने पड़े हों, उसके लिये ढ़ाई सौ रुपये मासिक देनेवाली नौकरीकी कतई इच्छा न हो और वह अंकिचन और ऋणग्रस्त होते हुए भी स्वाधीन रहकर अपना कारोबार करनेका विचार करे। देखनेमें क्या यह बिलकुल ही एक आश्चर्यजनक व्यापार नहीं मालूम होगा? परन्तु डा० पट्टाभि जैसे कट्टर स्वाभिमानी एवं स्वतंत्र स्वभाववाले व्यक्तिको सब प्रकारकी पराधीनतासे सदा ही हार्दिक घृणा रही है, इसीसे उन्होंने अपने हितैषियोंकी सरकारी नौकरी कर लेनेकी सलाहको सादर अस्वीकार कर स्वतंत्र रूपसे डाक्टरी करनेका ही निश्चय किया। अपने इस कार्यका क्षेत्र डा० पट्टाभिने मसलीपट्टमको बनाया, जहाँ दस वर्ष तक डाक्टरीका काम सफलतापूर्वक चलता रहा।

रोगोंका निदान करनेमें विशेष पटु होनेकी उनकी ख्याति शीघ्र ही इतनी फैल गयी कि डा० पट्टाभि की डाक्टरी खूब चलने लगी। इस अल्पकालमें उन्हें जो आय हुई, वह अधिक तो नहीं कही जा सकती, किन्तु आगेके लिये उनके खर्च-बर्चको काफी थी। थोड़े दिनों बाद ही उन्हें नसोंके दर्दकी बीमारी हो गयी, जो समय-समय पर उन्हें अब भी कष्ट देती रहती है। अपने स्वास्थ्यके विषयमें स्वयं डा० पट्टाभिका मत उल्लेखनीय है। वे कहते हैं—"भोजनके सम्बन्धमें बहुत सावधान रहनेको मैं लाचार हूँ। मैं सदा एक कौर कम ही खाता हूँ, क्योंकि एक कौर अधिक हुआ नहीं कि उस रात दर्द पैदा हो जायेगा। मैं प्रतिदिन सोलह घण्टे काम करता हूँ, क्योंकि कोआपरेटिव आन्दोलन, बैंक, इंश्योरेंस, पत्रकार और खादीके सङ्गठनके काम साथ-साथ करने पड़ते हैं, बार-बार दौरे पर जाने और व्याख्यान देनेका काम ऊपरसे। व्याख्यान देनेसे मुझे बड़ी थकावट मालूम होती है और उसके बाद भी उसका प्रभाव रहता है। मुझे यात्रा करनेमें बड़ा आनन्द आता है और जब रेलगाड़ीके चलनेसे हिलना-डुलना पड़ता है, तो असाधारण आनन्द मिलता है। एक वर्षमें मैंने अठाईस हजार मीलकी यात्रा की, किन्तु आरामके साथ वह सम्पन्न हुई और उससे मुझे कुछ कष्ट न हुआ। सच पूछिये तो जब मैं अपने केन्द्र मसलीपट्टमको छोड़ कर बाहर जाया करता हूं, तब मेरी शारीरिक अवस्था अधिक अच्छी रहती है।"

अनुभव

अपनी डाक्टरीके बीच हमारे चरित्रनायकको आरंभसे ही जो अनुभव हुए, उनका विवरण स्वयं उन्होंने ही अपने स्वाभाविक मनोरंजक ढंग से १९३७ ई० के ३ दिसम्बरको एक डिस्पेंसरीका उद्घाटन करते समय इस भाँति दिया था—"इस डिस्पेंसरीके स्वामी खद्दरके बड़े ही भक्त युवक हैं। बेजबाड़ासे वे इस गाँवमें डाक्टरी करने चले आये हैं। इससे हम समझ सकते हैं कि वे किस प्रकार एक लगनसे महात्मा गांधीके आदर्शों

को पूरा करनेमें लग रहे हैं। यह युवक 'पुनः गाँवोंको चलो, धन कमानेके स्थानमें सेवा व्रत ग्रहण करो'—इन आदर्शोंका पालन करनेके लिये इस तरह प्रयत्नशील हैं।

"१६०६ ई० में जब मैंने डाक्टरी आरंभ की थी, तब मद्राससे समय पर दवाइयां नहीं पहुँच सकी थीं और न (मसलीपट्टम) नगरमें मुझे कोई बुलानेवाला ही था। सौभाग्यसे पहलेपहल एक स्कूल अध्यापक मेरे पास आये, जो संस्कृतके बड़े विद्वान् थे। उन दिनों अन्य डाक्टर भी नहीं थे, जिनके पास कोई जाता। स्कूल मास्टरको पेचिशकी बीमारी थी। श्रीमोद्धापति सूर्यनारायण शास्त्रुलू गारू उनका नाम था। मेरे साथ कोई दवा तो वहां थी नहीं इसलिये दूसरा और कोई चारा न देख मैंने अंडी का तेल तजबीज किया। दो-दो घंटेपर इस दवाकी मात्राएं लेनेका आदेश दिया। मरोड़की पीड़ा तो पहली ही मात्रामें छू-मंतर हो गयी, परन्तु नुसखा लगातार तीन दिनों तक चालू रखा गया। रोग पूर्णतया मिट गया। तब नगर भरमें मेरे विषयमें यह चर्चा होने लगी कि एक नया डाक्टर आया हुआ है, जिसने अंडीके तेलसे एक रोगीको चंगा कर दिया। दूसरे दिन एक और रोगी मुझे मिला। वह एक गाड़ीवानका भाई था और स्वयं राजगीर था। मैंने अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझा। बीमारी साधारण निमोनियाकी थी। मेरे आदेशपर उसका शरीर एक ऊनी कम्बलसे अच्छी तरह ढंक दिया गया और थोड़ी मात्रामें ब्रांडी नामकी मदिरा दी गयी। कुछ समय बाद वह भी चंगा हो गया। फिर तो नगर के दो सौ गाड़ीवानोंमें तत्काल ही मेरा नाम सबोंकी जिह्वापर हो गया और वे यही कहते देखे जाते थे कि एक नया डाक्टर आया हुआ है, जो मुर्दोंको भी जिला देता है और तारीफ तो यह है कि वह किसीसे पैसा भी नहीं माँगता। इस घटनाके सात वर्ष पीछे मेरे उस मरीजने मुझे एक कुर्सी भेंट की थी, जो आज भी मेरे पास मौजूद है।

"कुछ दिनों पीछे एक जमींदार बीमार पड़े, उन्हें दस्त ही नहीं होता था। मेरे हाथमें दस रुपये रखते हुए उन्होंने चाहा कि दस मिनट

के भीतरमें उन्हें दस्त करा दूँ, ऐसे कष्टमें वे थे। अब मैं यह सोचने लगा कि दस मिनटके भीतर दस रुपये कैसे दस्त करा सकते हैं ? मैंने 'एनीमा' करना चाहा और एनीमाका मेरा यह प्रथम ही प्रयोग था। मेडिकल-कालेजमें अध्ययनके समय भी मैंने इसका प्रयोग कभी नहीं किया था। मेडिकल वार्डमें डाक्टर 'एनीमा' लिख दिया करते थे और वार्डका आदमी उसे दिया करता था। दूसरे दिन हम लिखते—"एनीमा'—अच्छा रहा। डाक्टर 'इन्जेक्शन' की तजबीज करता, तो एसिस्टेन्ट उसे देता और हम लोग तो दर्शक मात्र होते थे। यह कितने दुर्भाग्यकी बात थी कि मेडिकल कालेजके पाँच वर्षके अध्ययनके उपरान्त जब हमसे इनजेक्शन देने (सुई लगाने) को कहा गया, तो हमने अपनेको असहाय अनुभव किया ? कैसी बला ! जब यन्त्र द्वारा पानी चढ़ाया जाने लगा, तो वह भीतर गया ही नहीं। सारे यन्त्रकी जांच की, तो वह ठीक पाया गया। बहुत हाथ-पाँव मारनेके बाद अंतमें पानी भीतर चढ़ाया गया। मुझे तब आशा हुई, नहीं तो मैं उस रोगीके दस रुपये लौटा अपने साज-सामानके साथ लौट आकर अपने नामकी रक्षा करना चाहता था। मेडिकल कालेजमें अध्ययन करने और सीखी हुई विद्याके प्रयोगमें कितना भारी अन्तर है !

"कुछ दिनोंके बाद मैंने सारे औजार खरीद लिये और मोतिया बिन्दका आपरेशन करना चाहता था। लेकिन कोई आपरेशन करानेके लिये आये भी तो। अन्तमें एक विधवा आयी। 'अर्धोदयम' पर्वपर सागर-स्नान करनेका पुण्यलाभ करनेको वह आयी थी। मैंने तुरत उसे आपरेशनके टेबुलपर लिटानेका आदेश दिया। कोकीनकी सुई दी गयी और औजारसे आपरेशन आरंभ करना था लेकिन मेरा माथा चकराने लग गया, साथ ही पसीना छूटने लगा। मेरा होशो-हवास जाता रहा और उसी दशामें मैंने आपरेशन पूरा किया। तीसरे दिन पट्टी खोलनेमें भी मुझे डर लगता था। अन्तमें देखा गया कि आपरेशन शत प्रति शत सफल हुआ हैं।

"चिकित्सा-कार्य करनेवालेमें धैर्यका होना आवश्यक है। मद्रासमें आँखोंके एक डाक्टर थे। मोतिया बिन्दके आपरेशनके लिये एक रोगी

टेबुल पर लिटाया गया। डाक्टरने उससे कहा—'किलेपारू,' जिसका तामिल भाषामें अर्थ होता था 'नीचे देखो'। डाक्टरने तो समझा कि वह रोगी तामिल भाषा समझता है। असलमें रोगी वह भाषा जानता नहीं था, लेकिन प्रसंगके कारण डाक्टरका भाव उसने समझ लिया। लेकिन जो रोगी तामिल भाषा नहीं जानता, संभव है कि आपरेशन आरंभ होते ही वह ऊपरकी ओर देखने लग जाये। तब तो फल यह होगा कि डाक्टरके गालपर तुरन्त ही चपत लग जायेगी और रोगीकी आँखें समाप्त हो जांयगी। वास्तवमें सभी डाक्टरोंका आदर्श 'सत्य' होना चाहिये, चाहे वे नवयुवक हों या बृद्ध। एक रोगी प्रश्न कर सकता है कि ज्वर कब छोड़ देगा? डाक्टर इस भयसे कि रोगी किसी दूसरे डाक्टरके यहां न चला जाये, यह कह सकता है कि 'चार दिनमें'। तब यदि निश्चित दिन ज्वर नहीं छूटा और रोगी किसी दूसरे डाक्टरके यहां चला गया, तो इसमें कुछ आश्चर्य न होगा। यदि एक सप्ताहका समय लिया जाये और यह संकेत कर दिया जाये कि एक सप्ताह बाद इसके टाइफाइड हो जानेकी संभावना है, तो चाहे वह इस बीच दो या तीन डाक्टरोंके पास भी क्यों न गया हो, तीसरे सप्ताहमें वह अवश्य आपके पास आयेगा। मुझे टाइफाइडके ऐसे दो रोगियोंकी चिकित्सा करनी पड़ी थी, जिसमें एककी डेढ़ सौ दिनों तक और दूसरेकी अस्सी दिनों तक।

"जिनका हममें विश्वास होगा, वे ही अन्त तक हमसे चिकित्सा कराते रहेंगे। कोई रोगी यदि दूसरे किसी डाक्टरके यहां चला जाता है, तो हमें निराश नहीं होना चाहिए। डाक्टरको अपनेको रोगीके ही परिवारका एक आदमी समझना चाहिए। एक रोगीको चंगा कर देनेके साथ ही हमारा कर्त्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। यदि किसी परिवारके एक आदमीको टाइफायड हो जाता है, तो डाक्टरको समझना चाहिए कि यदि उसके घरमें पीछे और किसी आदमीको वही बीमारी होती है, तो उसके लिये वह उत्तरदायी ठहरता है। चीनमें किसी रोगीके परिवारमें वैसे रोगियों की संख्या अधिक होती है, तो उसके डाक्टरकी आय घट जायेगी। ऐसा होना ही चाहिये।

"जब हम भोजन करनेको बैठे हैं, उसी समय किसी रोगीके यहांसे बुलावा आ जाता है और हमें भोजन छोड़ देना पड़ता है। जब हम पहले घरमें गये और बगलके घरके रोगीके विषयमें भी पूछ-ताछ कर ली, तो बात तो वहीं समाप्त हो गयी। अगर हमारी वह फीस या गाड़ी-भाड़ा चुकानेसे डरेगा, तो मेरे पूछनेके पहले ही वह बाहर आ जायेगा। यह निश्चित है और वह कहेगा कि अमुक रोगीकी अवस्था सुधर रही है। आपका दायित्व समाप्त हो जाता है और आपकी गाड़ीका पेट्रोल बच जायेगा। आजकल तो मोटर-गाड़ी ही डाक्टरकी आधी आमदनी खा जाती है। प्रतिस्पर्द्धाके कारण मोटर रखनेकी आवश्यकता होती है। लेकिन जब मैं डाक्टरी करता था, तब तो देशी गाड़ीसे काम निकाल लेता था। इसलिये केवल दिखावा काफी नहीं है। चिकित्सा-कार्य करनेवालेको रोगीके परिवारके आदमीके समान बन जाना चाहिये।

"हम मलेरियाकी चिकित्सा करते हैं। सभी जानते हैं कि अंग्रेजी दवा तुरन्त अपना प्रभाव दिखायेगी, लेकिन ज्वर एक सप्ताह पीछे फिर आ जाता है। कुनैनकी तीन मात्रा देते ही ज्वरका आना बंद हो जायेगा और एक सप्ताह पीछे वह फिर आ गया। हमे पढ़ाया गया था कि अगर मलेरियाको एकदम मिटाना है, तो छः सप्ताह तक कुनैनकी मात्राएँ सप्ताह में एक बारके हिसाबसे देनी चाहियें। हम वैसा करते नहीं। हमारे डाक्टर लोग मेरी मात्राओंको पशुको दी जानेवाली या उससे अधिक समझते हैं, लेकिन मैं तो तीस ग्रेनसे कमकी मात्रा कभी देता ही नहीं। जब टाइ-फायडका बुखार घट जाता है, तब अचानक जाड़ा देकर बुखार आना शुरू हो सकता है। इसे भूलसे मलेरिया समझ लिया जा सकता है और कुनैनकी भर्त्ती शुरू कर दी जा सकती है। चुपचाप धैर्यसे बैठ रहनेसे ही रोगी आराम हो जायेगा, लेकिन कुनैन देनेसे उसका जीवन खतरेमें पड़ जायेगा। चिकित्साके ग्रन्थोंका निरंतर अध्ययन आवश्यक है। कुछ लोग सोचते हैं कि केवल मद्रासमें ही वे रोगमुक्त हो सकते हैं। रोगी अमुक डाक्टरके पास जाता है। कुछ दिन तक उसे फीस चुकाते रहनेके

बाद, जब अवस्थामें कोई सुधार नहीं पाता, तो 'एक्स-रे' परीक्षा कराने को स्पर-टैंक पहुँचता है। तुरन्त निदान करके दन्त-रोग बताया जाता है। तब दांतोंके डाक्टरके पास जाता है। वह एक-दो दांत निकाल देनेके बाद आँखोके विशेषज्ञ डाक्टरके पास जानेको कह देता है और रोगीको परेशान कर देता है। इस प्रकार विशेषज्ञताका भूत आवश्यकतासे अधिक अपना काम करता है। एक डाक्टरको सभी रोगोंका ज्ञान होना चाहिये। यद्यपि हम अन्य डाक्टरोंसे सभी समयोंमें परामर्श ले सकते हैं, किन्तु मुझे भय है कि सब रोगियोंको विशेषज्ञोंके हाथमें सौंपना उन रोगियोंके हितकी बात नहीं है।

"जब मेडिकल कालेजमें मेरा पांचवां वर्ष था, मुझे एक बार अपने जन्म-स्थानको जाना पड़ा। एक स्त्रीको प्रसवके पूर्वकी पीड़ा भयंकर रूपसे ब्याकुल किये हुए थी और उसका बचना करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता था। मुझसे उसे देखनेको कहा गया। मेरे पास उस समय एक स्टेटेथोस्कोप (शब्दसे फेफड़ेकी अवस्था जाननेका यंत्र, जो डाक्टर लोग लिये रहते हैं) ही था और कुछ नहीं। मूत्र बंद हो गया और पेड़ू फूल उठा। यही बीमारी थी। एक लेडी डाक्टरकी जरूरत थी, पर कोई वहां मिल नहीं सकती थी। जबतक मूत्र बाहर न आये, बच्चा होने की कोई संभावना नहीं थी। रबड़की एक नुकीली वाटी भीतर घुसेड़ी गयी और निराशामें किया हुआ मेरा प्रयत्न सफल हुआ। आवश्यकता है धैर्य और प्रत्युत्पन्नमतित्व प्राप्त करनेकी।"

चरित्र निर्माणके सिद्धांत

डा० पट्टाभिके जीवन-निर्माणमें उनके सिद्धांत बड़े ही सरल और महत्वपूर्ण हैं।

निम्न आदर्श-वाक्य अपने कमरेकी दीवारोंपर टांग रखते हैं—

मैं जो कहता हूं, वही मेरा विचार होता है।

मैं वही करता हूं, जो मेरा विचार होता है।
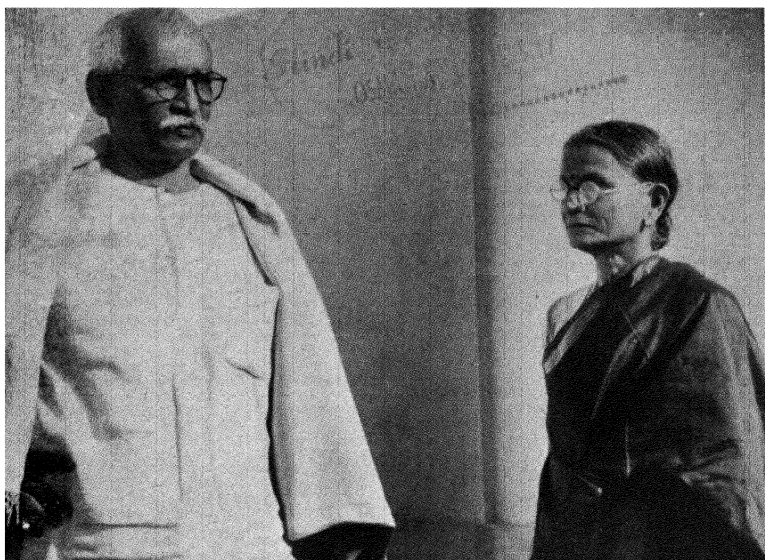
डा० पट्टाभि और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरम्मा देवी
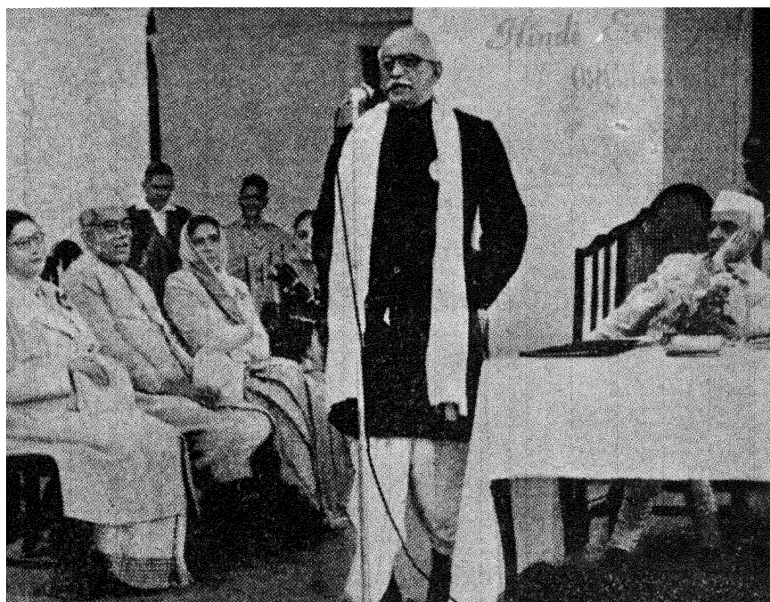
दिल्ली प्रान्तीय समाजसेवा सम्मेलनके अधिवेशनमें डा० पट्टाभि सभापति पदसे भाषण दे रहे हैं, दाहिनी ओर पण्डित नेहरू बैठे हैं।

मैं सत्य बोलता हूं, चाहे आकाश क्यों न फट पड़े।
मैं मूर्खोंको प्रसन्नतासे सहन नहीं करूंगा, दुष्टोंको तो और भी नहीं।
मैं दूसरोंको नहीं ठगता और दूसरोंको ऐसा अवसर नहीं दूँगा कि वे मुझे ठग सकें।
मैं याचना नहीं करता।
मैं लालच नहीं करता।
मैं भय नहीं करता।
मैं शान्त हूं, यद्यपि सम्पन्न नहीं हूं।
मैं सुखी हूं, यद्यपि सुखकी सामग्री नहीं है।
मैं अपनी आवश्यकता भरके लिये प्रयत्न करता हूं, अधिककी चाह नहीं।
मैं अपने पड़ोसियोंसे वैसा ही प्रेम करता हूं, जैसा स्वयं अपनेसे और अन्योंके प्रति वैसा ही करता हूं, जैसा कि मैं चाहता हूं कि वे मेरे प्रति करें।
मैं बुराईको भलाईसे जीतता हूं और जिन्होंने मेरे साथ बुराई की है, उनके साथ भलाई करनेका सदा प्रयत्न करता हूं।

डाक्टरीका परित्याग

डाक्टरीके कार्यसे इतनी जल्दी ही डा० पट्टाभिको क्यों ऐसी घृणा हो गयी कि उन्होंने उसका एकदम परित्याग कर दिया, यह समझनेके लिये सन् १९१६ ई० की एक घटनाकी ओर जाना होगा। उस सन्का कांग्रेस अधिवेशन लखनऊमें हो रहा था और डा० पट्टाभि उसमें सम्मिलित होनेके लिये जा रहे थे। परन्तु मार्गमें उनपर उस पुरानी बीमारीका फिर एकाएक आक्रमण हो गया, जिसके कारण शरीरके भीतर भारी जलन पैदा होती और एक अंशतक उदासी और चिड़चिड़ापन आ जाता है। रास्तेसे ही उन्हें घर लौटा ले आना पड़ा। स्वास्थ्य लाभ करनेके लिये

काफी समय तक उन्हें उटकमंडमें रहना पड़ा। कोई आराम नहीं मिला, किसी दवाने काम नहीं किया और मेडिकल कालेजवाले उनके गुरु लोग भी कोई दवा आराम होनेकी नहीं बता सके। अन्तमें डा० पट्टाभिकी बड़ी बहिनने अफीमकी दवा बतायी और तबसे वह इनकी चिरसंगिनी बन गयी है। उसी समयसे डा० पट्टाभिको दवासे बड़ी घृणा हो गयी और जब कोई उनसे परामर्श करने आता, तो उन्हें बहुत बुरा लगता है। यहांतक कि इनके घरवालोंको भी आवश्यकता पड़ने पर दूसरे चिकित्सकोंकी शरण लेनी पड़ती थी। यदि ये किसीके प्रति धैर्य दिखाते ही हैं, तो केवल इस लिये कि वह कांग्रेस-कार्यकर्त्ता है या खादीका भक्त है अथवा इंश्योरेंस या बैंकका प्रतिनिधि है। एक घटना याद आती है। एक दिन एक बीमार आदमी डा० पट्टाभिके घरके द्वारपर खड़ा था और उनसे परामर्शके लिये अनुमति पानेकी प्रतीक्षामें था। सदा कार्यव्यस्त रहनेवाले डा० पट्टाभिकी दृष्टि किसी प्रकार उसपर पड़ गयी। डाक्टरने उससे प्रतीक्षाका कारण पूछा। रोगीको अंग्रेजीका ज्ञान बहुत साधारण था और उसने टूटी फूटी भाषामें जवाब दिया कि मैं डाक्टरी सहायताके लिये यहां आया हूं। डा० पट्टाभिने तुरन्त उत्तर दिया—"यहां तो इंश्योरेंसकी सहायता है, बंककी सहायता है और खादीकी सहायता है, लेकिन डाक्टरी सहायता नहीं है।" इसीसे प्रकट हो जाता है कि डा० पट्टाभिको डाक्टरीके काम से कितनी उदासीनता हो गई है।

राजनीतिक क्षेत्रमें पदार्पण

डा० पट्टाभिने डाक्टरी छोड़ देनेके पश्चात् राजनीतिक क्षेत्रमें नियमित रूपसे पदार्पण किया और अपना अधिकांश समय तभीसे देशके राजनीतिक कार्योंमें लगाने लगे। वैसे तो १६०५ ई० के बंग-भंगके समयसे ही वे राजनीतिक आन्दोलनोंमें अनुराग प्रकट करने लग गये थे और पहली वार वे अपने विद्यार्थी-जीवनमें ही १८६८ ई० वाले कांग्रेसके

अधिवेशनमें उपस्थित हुए थे। वह कांग्रेसका चौदहवां अधिनेशन था और श्री आनन्दमोहन बोसकी अध्यक्षतामें मद्रासमें हुआ था। १६०८ ई० में जब कांग्रेसका अधिवेशन एक बार फिर मद्रासमें बा० रासबिहारी घोष की अध्यक्षतामें हुआ, तब तो उसमें होनेवाले बाद-विवादमें भी उन्होंने भाग लिया था, जिससे माडरेट नेताओंका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो गया था। बंग-भंगके पश्चात् जो स्वदेशी-आन्दोलन छेड़ा गया था, उससे केवल बंगालमें ही नहीं, बल्कि भारतके अन्य प्रांतमें भी नवजीवनका संचार हो चला था और सर्वत्र जागृतिके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। उन दिनों लोकमान्य तिलक, श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, बाबू बिपिनचन्द्र-पाल प्रभृति नेताओंने अपने भाषणों और लेखों द्वारा देशवासियोंमें असाधारण उत्साहकी जो लहर पैदा कर दी थी, वह सभी प्रान्तोंके प्रतिभाशाली देशभक्तोंको अपनी ओर आकर्षित कर रही थी और डा० पट्टाभि पर भी उसका पूरा प्रभाव पड़ा। आंध्रके जिन तीन नेताओंकी चर्चा पहले की जा चुकी है, उन्होंने 'कृष्ण पत्रिका' द्वारा राष्ट्रीय संदेशका खासा और देशव्यापी प्रचार किया था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि राजनीतिक जीवनमें प्रवेश कर डा० पट्टाभिने अल्पकालके भीतर ही अपनी विमल प्रतिभा, योग्यता एवं वाग्मिताका बहुत अच्छा परिचय दिया और शीघ्र ही आपकी प्रसिद्धि बढ़ चली।

आंध्रजातीय कला-शाला

अभी डा० पट्टाभिको अपनी डाक्टरी आरंभ किये एक वर्ष ही बीत पाया था कि बंगालके वन्देमातरम्-आन्दोलनका प्रसार दूर-दूर तक होने लग गया था। उस आन्दोलनके एक प्रधान नेता बा० बिपिनचन्द्र पाल के ओजस्वितापूर्ण व्याख्यानों और लेखोंसे आंध्र प्रान्तके युवक विशेपरूपेण प्रभावित हो रहे थे। पाल महाशयके दौरेके समय राजमहेन्द्री ट्रेनिंग कालेजके विद्यार्थियोंने उन्हें अभिनन्दन पत्र भेंट किया, जिसके कारण कुछ विद्यार्थी दंड स्वरूप कुछ समयके लिये कालेजसे निकाल दिये गये।

उन्हींमें एक बहुत ही होनहार विद्यार्थी श्री० हरिसर्वोत्तम राव भी थे। तुरन्त ही राजमहेन्द्री और मसलीपट्टम्में राष्ट्रीय स्कूल खोल देनेका निश्चय कर लिया गया। मसलीपट्टम्के राष्ट्रीय स्कूलके सेक्रेटरी डा० पट्टाभि बनाये गये। इसकी स्थापना १६०७ ई० के नवम्बर मासमें हुई थी। पीछे डा० पट्टाभि और उनके अन्य दो प्रमुख साथियोंने १६१० ई० में आंध्र-जातीय कला-शालाकी स्थापना की। इस स्कूलको चलानेके लिये वे तीनों पुरुषार्थी घर-घर सहायता मांगते फिरे और इस तरह लाखों रुपये संग्रह किये। पर पीछे कुछ ईर्षालुओंसे इन देशसेवकोंकी सफलता सहन नहीं हुई और यह अफवाह उड़ा दी गयी कि कला-शालाका धन उड़ाया जा रहा है। उसके सेक्रेटरीकी हैसियतसे पट्टाभि ने तुरन्त ही चुनौती दी कि जो कोई चाहे, आय-व्ययके हिसाबकी जांच कर सकता है, पर वैसा करनेका साहस किसीने नहीं किया। पीछे सर्वश्री नरसिंह राजू, सुब्बा राव पांतुलू, वेंकटरत्नम् ऐयरकी एक कमेटी व्यवस्था चलानेवाली कमेटीकी ओरसे नियुक्त की गयी, जिसने भली भांति जाँच-पड़ताल करके एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की और उसके द्वारा लगाये जानेवाले आरोपोंकी निस्सारता प्रमाणित कर दी। डा० पट्टाभि सीतारमैया आज भी उस संस्थाके सुयोग्य सेक्रेटरी हैं और आंध्र प्रदेशमें यह जातीय कला-शाला प्रदेशकी सभी शिक्षण-संस्थाओंसे बढ़ चढ़कर है और पूर्ण राष्ट्रीय नियंत्रण में सर्वरूपेण राष्ट्रीय है।

सदाके गरमदली
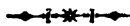
बंग-भंगके पश्चात् देशके भीतर जो विदेशी बायकाट, राष्ट्रीय शिक्षाका प्रचंड आन्दोलन खड़ा हो गया था, उसके तीन प्रमुख नेता ला० लाजपत-राय, बालगंगाधर तिलक और बिपिनचन्द्र पाल थे, जो उन दिनों लाल-बाल-पालके नामसे सुप्रसिद्ध हो रहे थे। डा० पट्टाभि उन्हींके दलके आदमी थे। पीछे जब महात्मा गांधीने अपना धार्मिक-राजनीतिक आन्दोलन खड़ा किया। तब १६२० ई० से वे उसके पक्के समर्थक बन गये।

डा० पट्टाभिके एक साथी श्री कृष्णाराव 'कृष्णा पत्रिका' के सम्पादक थे और जब उस पत्रिकामें कई राजद्रोहपूर्ण लेख प्रकाशित हुए, तब उस पर सरकार मामला चलाना चाहती थी। परन्तु पीछे जिलेके अंग्रेज कलक्टरने यह कहा कि यदि पत्रिका कृष्णारावजीके हाथसे निकलकर दूसरे किसीके प्रबन्धमें चली जाये, तो मुकद्मा चलानेका विचार त्यागा जा सकता है। उस समय डा० पट्टाभिने उसे लेकर ऐसे अच्छे ढंगसे चलाया कि राज-नीतिक वातावरण शान्त होनेपर उन्होंने १९११ ई० में पुनः उस पत्रिकाको श्रीकृष्णारावको लौटा दिया, तब ग्यारह सौ रुपये भी सेविंगमें जमा हो गये थे। डा० पट्टाभिकी अपनी एक साप्ताहिक-पत्रिका भी थी, जिसके वे ही सम्पादक भी रहे हैं। 'जन्मभूमि' नामकी अपनी इस पत्रिकामें गांधी-भक्त डा० पट्टाभिने उस समय देशबन्धु चित्तरंजन दास और पं० मोतीलाल नेहरूके विरुद्ध बड़े कड़े लेख लिखे थे, जब उन्होंने महात्मा गांधीके असहयोग आन्दोलनसे विद्रोह कर स्वराज्य पार्टी खड़ी की थी। आल-इंडिया कांग्रेस कमेटीमें भी उन्होंने उस पार्टीकी नीति पर और उसके संस्थापकोंकी बड़े ही तीखे शब्दोंमें समालोचना की थी, जिससे अन्य प्रान्तोंके लोगोंको भी पता चल गया कि डा० पट्टाभि गांधीवादके कितने सच्चे और कट्टर समर्थक हैं। कहते हैं कि तभीसे कांग्रेसके भीतर उनकी इतनी धाक जम गयी कि राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्वर्ण-जयन्तीके अवसर पर कांग्रेसका इतिहास प्रकाशित करनेका निश्चय किया गया, तब इतिहास लिखनेका भार आप ही को सौंपा गया था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस कामको आपने ऐसी पटुतासे सम्पन्न किया कि आपके लिखे हुए उस इतिहासकी सर्वत्र सभी कांग्रेस जनोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की। डा० पट्टाभिकी अनेक सुन्दर रचनाओंमें वह सर्वोपरि हुई है, यह तथ्य सभी स्वीकार करते हैं।

डा० पट्टाभि अपनी डाक्टरीके समयसे ही कांग्रेसके कार्योंमें सक्रिय भाग लेने लग गये थे और १९१६ ई० में जब उन्होंने इस पेशेको सदाके लिये छोड़ दिया, तब तो कांग्रेसकी सेवामें इस तरह वे जुट गये कि वही

अब उनका स्थायी पेशा बन गया। १९१५ ई० में कांग्रेसका जो अधिवेशन बम्बईमें हुआ था, उसके अध्यक्ष थे सर एस० पी० सिंह जो कुछ समय पीछे लार्ड सिन्हा बन गये थे और भारतवासियोंमें प्रथम और अंतिम लार्ड भी हुए हैं। उस कांग्रेसमें डा० पट्टाभिने कुछ ऐसे नेताओंके विरुद्ध आवाज उठाकर काफी सनसनी पैदा कर दी थी, जो स्वदेशी आन्दोलन के दिनोंमें भी विदेशी वस्त्र पहनते हुए कांग्रेसके मंचपर विराजमान थे। कहते हैं कि इससे डा० पट्टाभिकी गणना कांग्रेसके क्षेत्रमें अच्छे निर्भीक और सच्चे कार्यकर्त्ताओंमें होने लग गयी और १९१६ ई० में आप आल-इंडिया कांग्रेस कमेटीके सदस्य पहली ही बार चुने गये। यह तो ऊपर कहा ही जा चुका है कि वे पहले पहल मद्रासमें हुए १८९८ ई० के कांग्रेस-अधिवेशनमें सम्मिलित हुए थे, जब कि वे बी० ए० क्लासके विद्यार्थी थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आल इंडिया कांग्रेस कमेटीका प्रथम बार सदस्य बननेके समयसे ही आपका सम्बन्ध उस संस्थासे अब तक बराबर बना हुआ है और उत्तरोत्तर वह बढ़ता ही चला आ रहा है। अन्तमें आप ही जयपुरमें होनेवाले कांग्रेसके अत्यंत महत्वपूर्ण अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं।

पृथक् आंध्र प्रान्तका आन्दोलन

राष्ट्रीय शिक्षाके प्रसारके साथ ही डा० पट्टाभिका ध्यान भाषाके आधारपर प्रान्तोंकी रचना होनेके प्रश्नपर गया और तबसे आजतक आप उसके प्रबल समर्थक हैं। कांग्रेसके १९१७ ई० के अधिवेशनमें डा० पट्टाभि ने भाषाके आधारपर ही आंध्रको पृथक् प्रान्त बनानेके लिये आवाज उठाई। उस वर्षके कलकत्ता वाले कांग्रेसके अधिवेशनकी अध्यक्षा डा० एनीबेसेंटसे घंटों वादविवाद किया गया और उस झड़पका यह परिणाम हुआ था कि कांग्रेसने अपने विधानमें आंध्रको एक पृथक् प्रान्त बना दिया। वैसे तो डा० पट्टाभिको प्रान्तोंकी भाषाके आधारपर पुनः रचना करनेकी आवश्यकता तो १९०८ से ही

मालूम होने लगी थी, किन्तु आरम्भमें इस प्रश्नसे सहानुभूति प्रकट करनेवाले इने-गिने ही लोग देखे गये। पट्टाभिने इस प्रश्नपर जोर देते हुए बड़े जोरोंका आन्दोलन छेड़ा था और इसकी मांग करनेके लिये आंध्र की कानफरेंस सर बी० एन० शर्माकी अध्यक्षतामें बापाटला स्थानपर की गयी थी, जिसके बाद तो कितनी ही कानफ्रेंसें की गयीं और सबोंमें पृथक् आंध्र प्रान्त बनानेकी मांग जोरोंसे की जाती रही। इस सम्बन्धमें डा० पट्टाभिका कहना यह रहा है कि यदि अंग्रेज अपनी फूट पैदा कर शासन करनेकी नीतिके अनुसार प्रान्तोंको भाषाके आधारपर अपनी रचनाके अनुसार बदलनेको तैयार नहीं, तो कमसे कम कांग्रेस क्यों नहीं भाषाके आधारपर अपने प्रान्तोंकी रचना करनेको तैयार होती है? कांग्रेसने तो इस सिद्धांतको स्वीकार कर ही लिया और उसने अपने लिये इसी सिद्धांत के आधारपर सरकारी प्रांतोंके स्थानपर भाषाके आधारपर अलग-अलग प्रांत बनाकर उनकी प्रादेशिक कमेटियां भी बना डालीं, पर उस आन्दोलनका प्रभाव उस समयकी सरकार पर भी हुए बिना नहीं रहा। तत्कालीन भारत-मन्त्री मि० मांटेगूने भी अपनी मांटेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टमें भाषाके आधारपर प्रांतोंकी पुनःरचना करनेका सिद्धान्त स्वीकार किया, जिसका श्रेय आन्ध्रके उस डेपुटेशनको ही है, जो उनसे इस प्रश्नपर जोर देनेके लिये मिला था। उस डेपुटेशनमें डा० पट्टाभिका प्रमुख भाग था। पीछे १९१८ ई० में जो साउथबारो कमीशन भारतमें आया था, उसके सामने आंध्रकी ओरसे डा० पट्टाभिने चतुरतापूर्ण गवाही दी थी, उससे आंध्रकी जनताके आप परम श्रद्धास्पद बन गये थे। पीछे आंध्र प्रांतमें स्वतन्त्र निर्माणके लिये लड़नेके विचारसे डा० पट्टाभिको इङ्गलैंड भेजनेकी चर्चा चली थी, किन्तु वह वहीं रह गयी। आंध्र प्रान्तीय कान्फ्रेंसकी अध्यक्षता करनेका आग्रहपूर्ण अनुरोध प्रति वर्ष होनेपर भी डा० पट्टाभिने उसे १९२१ ई० में ही स्वीकार किया, वह कान्फ्रेंस बरहमपुरमें हुई थी और उसके अध्यक्षकी हैसियतसे इन्होंने ऐसी सुदक्षतासे उसकी व्यवस्था की थी कि लोग यह समझने लग गये कि

डा० पट्टाभि किसी भी पार्लमेंटके सर्वोत्तम स्पीकर (अध्यक्ष) बननेकी बेजोड़ योग्यता रखते हैं। इस कान्फ्रेंसमें उन्होंने असहयोग आन्दोलनका बड़े ही प्रशंसनीय ढंगसे समर्थन कराया था। जब वे बरहमपुर से अपने स्थानको लौट रहे थे, तब प्रत्येक स्टेशनपर उनकी गिरफ्तारी की आशंका की जा रही थी, किन्तु वह तो हुई नहीं, हां, सभी स्टेशनोंपर आपका दर्शन करनेके लिये भारी जनसमूह एकत्र हो जय-जयकार करता देखा गया। असहयोग आन्दोलनके समय यह प्रश्न खटाईमें पड़ गया था, किन्तु उसके बाद जब प्रान्तोंकी शासन-व्यवस्था कांग्रेसके हाथोंमें आ गयी, तब फिर आन्ध्र प्रांतके रचना-आन्दोलनने जोर पकड़ा और १६३७ ई० में कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीने उसे स्वीकार कर कांग्रेसी मिनिस्ट्रियोंसे उस दिशामें काम करनेका अनुरोध किया। आंध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षकी हैसियतसे डा० पट्टाभिने मद्रासकी कांग्रेस मिनिस्ट्रीको इस ओर ध्यान देनेको वाध्य किया और उसने भारत-मंत्रीके पास भेजे हुए अपने खरीतेमें आन्ध्रका अलग प्रान्त बनाने पर जोर दिया। गवर्नरने भी उसकी सिफारिश पर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा दी थी। सिफारिश यह थी कि राजधानी मद्रास रहे और तामिल तथा तेलगू प्रान्तोंके लिये एक गवर्नर हो। डा० पट्टाभिको पूर्ण आशा है कि वे अपने जीवनकाल में ही आन्ध्र प्रांतको एक अलग प्रान्त बना देख लेंगे।

असहयोग आंदोलनमें

एनीबेसेंटने होमरूलका जो प्रचंड आंदोलन छेड़ा था, उसमें डा० पट्टाभिने भी सोत्साह भाग लिया था। वह आंदोलन जब ब्रिटिश अधिकारियोंको एकदम असह्य हो गया, तब १६१७ ई० के जून महीनेमें उन्होंने एनीबेसेंट और उनके प्रमुख सहयोगी मि० अरंडेल और मि० वाडियाको गिरफ्तार कर नजरबंद करनेका आदेश दिया। उनकी नजरबंदी पर विचार कर आवश्यक कार्रवाई करनेके लिये अखिल-

भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन करनेकी आवश्यकता पर सर्वप्रथम जोर देनेवाले डा० पट्टाभि ही थे। वह अधिवेशन बम्बईमें हुआ, जहां पर निष्क्रिय प्रतिरोध करनेका निश्चय किया गया। इसके उस आन्दोलनमें डा० पट्टाभिने पूरा भाग लिया और कई समाचार पत्रोंमें वे बड़े जोरदार लेख लिखते रहे। इसी समय उन्हें अपने एक निजी अंग्रेजी पत्रकी आवश्यकता प्रतीत हुई और १९१९ ई० में 'जन्मभूमि' को निकालकर उन्होंने उसकी पूर्त्ति की थी। यहां पर यह जान लेना भी जरूरी है कि मांटेगू-चेम्सफोर्डके सुधारोंके विरुद्ध अड़ंगेबाजीकी जो नीति लोकमान्य तिलकने वनायी थी, उसके ये बड़े भारी समर्थक थे और १९२० ई० में महानंदीमें जो आंध्र प्रांतीय कानफरेंस हुई थी, उसमें अड़ंगेवाली (गत्यवरोध) का प्रस्ताव डा० पट्टाभिने ही उपस्थित किया था। पीछे लोकमान्यका १ अगस्तको स्वर्गवास हो जानेपर भारतके राष्ट्रीय आंदोलनका नेतृत्व जब महात्मा गांधीने संभाला, तब डा० पट्टाभि उनके अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनके प्रबल समर्थक बन कार्य करने लगे और उनके पट्ट शिष्य बन गये। डा० पट्टाभि जैसे वाग्मी और उच्च कोटिके लेखकको पाकर असहयोग आंदोलन आंध्र प्रान्तमें बड़ी द्रुतगतिसे चतुर्दिक्में फैल गया। फिर तो शीघ्र ही आंध्र उस आंदोलनका एक प्रधान केन्द्र बन गया। महात्मा गांधीकी प्रशंसामें डा० पट्टाभिने अपनी पत्रिका 'जन्मभूमि'में जैसे जोरदार लेख उन दिनों लिखे थे, उनका स्मरण आंध्रवाले आज भी किया करते हैं। 'अवतार गांधी' शीर्षक लेखमें तो वह जादू था, जिसने आंध्र प्रान्तमें महात्मा गांधीको साक्षात् अवतार मान लेनेके लिये अगणित जनोंको तैयार कर दिया। असहयोग आंदोलन पर डा० पट्टाभिने ऐसे विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे और प्रकाशित किये थे कि महात्मा गांधीने उन्हें 'ब्राह्मण भाष्यकार' की उपाधि दे दी थी। १९२१ ई० में यह आम चर्चा थी कि डा० पट्टाभिके कतिपय लेखोंको लेकर उनपर मुकद्दमा चलेगा, किन्तु वह चला नहीं। डा० पट्टाभि 'जन्मभूमि' को १९३० ई० तक सफलतापूर्वक चलाते रहे,

नमक सत्याग्रहके समय उनके जेल चले जाने पर वह पत्रिका बंद हो गयी।

सितम्बर १९२० ई० में कांग्रेसका विशेष अधिवेशन लाला लाजपतरायकी अध्यक्षतामें कलकत्तामें और साधारण वार्षिक अधिवेशन श्रीयुक्त विजय राघवाचार्यकी अध्यक्षतामें नागपुरमें हुआ, उन दोनों ही में डा० पट्टाभिने महात्माजीके अहिंसात्मक असहयोगके पूरे कार्यक्रमको स्वीकार करनेके पक्षमें अपना सारा जोर लगाया था। नागपुरमें एक उल्लेखनीय घटना हुई। विषय-निर्वाचिनी समितिमें पार्लमेंटके एक सदस्य कर्नल वेजउड भी उपस्थित थे और उन्हें अपने विचार प्रकट करनेका अवसर भी मिला था। वे एक भारतहितैषी अंग्रेज थे और उन्हें असहयोग आन्दोलनमें बड़ा भारी खतरा दिखाई पड़ता था, इसी अपने भाषणमें उन्होंने कांग्रेससे साग्रह अनुरोध किया कि वह असहयोग की नीति ग्रहण करनेसे रुके। उन्होंने कहा कि असहयोग करनेसे "पुलिस आप लोगोंके पीछे पड़ जायगी और आप अपना काम बेरोक-टोक न कर सकेंगे। आपके वकीलोंने सम्राटके प्रति राजभक्तिकी शपथ ले रखी है, इसलिये न्यायतः वे असहयोग नहीं कर सकते। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि इंग्लैंडमें आपके जो मित्र हैं, उनकी सहानुभूति भी जाती रहेगी।" डा० पट्टाभिसे उनकी ये बातें नहीं सही गयीं और उन्होंने खड़े होकर तुरन्त ही यह कड़ाकेदार जवाब दिया— "कर्नल वेजउड इंग्लैण्डसे इतनी दूर चलकर हमें यह भय दिखानेके लिये आये हैं कि हमारे असहयोग करनेकी अवस्थामें पुलिस हमारे पीछे पड़ जायगी। मैं इस समितिके सबसे अल्पवयस्क सदस्यकी हैसियतसे उन्हें यह बता देना चाहता हूं कि अपने सार्वजनिक जीवनके गत चौदह वर्षों के भीतर, जब हमने एक राष्ट्रीय कालेजकी स्थापना की और उसके लिये धन संग्रह किया, हमने जितना भी कर पाया उसका प्रत्येक रुपया लाल पगड़ीकी छायामें ही एकत्रित किया है। वकीलोंके असहयोगके अनौचित्यके पक्षमें उन्होंने जो तर्क उपस्थित किया है, ठीक उसीके

कारण तो हम यह चाहते हैं कि वे अपनी उन सनदोंको फाड़कर फेंक दें। जिनमें उनके सम्राटके भक्त बने रहनेका आदेश है। राजभक्तिके दिन लद चुके—लद चुके और वे अब फिर लौटकर नहीं आनेके। अंत में कर्नल वेजउडने कहा है—'हम इंग्लैण्डमें अपने मित्रोंको खो देंगे।' मैं स्पष्ट शब्दोंमें, किन्तु ससम्मान यह कह देना चाहता हूं कि कि इंग्लैण्डमें हमारा कोई मित्र नहीं है और न कोई हो सकता है। हमारे मित्र तो भारतमें हैं और भारत ही ऐसा स्थान है, जहाँ हमें मित्रों के लिये आशा करनी चाहिये।" डा० पट्टाभिके इस तीखे, किन्तु स्पष्ट कथनको उपस्थित जनोंने बड़े ध्यानसे सुना और पीछे इसके लिये सभी ओरसे आपको बधाइयां मिलीं।

नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनकी समाप्ति हो जानेके बाद महात्मा गांधीने डा० पट्टाभिसे कहा—"प्रान्तोंके पुनर्गठनके सम्बन्धमें आप सब कुछ जानते हैं। अब आप जिस तरह भारतका विभाजन करना चाहते हैं करिये।" महात्मा गांधीके इस आदेशके अनुसार डा० पट्टाभि ने ही १ जनवरी १९२१ को देशको वर्त्तमान इक्कीस कांग्रेस क्षेत्रमें बाँटा था।

असहयोग आन्दोलनका जोर १९२१ ई० में दिनपरदिन अधिकाधिक होता गया और नागपुर कांग्रेसमें जिन देशबन्धु चित्तरंजन दास ने कलकत्तेके निर्णयको बदलवानेके लिये अपनी सारी शक्ति लगाई, किन्तु फिर भी वे सफल नहीं हो सके, नागपुरके निश्चयके पश्चात् देशभरमें असहयोग आन्दोलनकी धूम मच गई। फिर तो स्वयं दास महाशयने भी अपनी बैरिस्टरी छोड़ दी और आन्दोलनमें पूर्णरूपसे पड़ गये। सारे देशमें उसकी धूम थी और महात्मा गांधीने जब बारदोली में सत्याग्रह छेड़नेका निश्चय प्रकट किया, तब तो और की तो बात ही क्या, देशबन्धु दास और पं० मोतीलाल नेहरू जैसे वकील नेताओंको भी यह दृढ़ विश्वास हो चला था कि महात्मा गांधी एक वर्षके भीतर ही स्वराज्य प्राप्त हो जानेकी जो बात कहते हैं, वह पूरी हो सकती है।

परन्तु महात्मा गांधीने जब चौरी-चौराके हिंसा-कांडके पश्चात् बारदोली में सत्याग्रहकी लड़ाई छेड़नेका विचार स्थगित कर देनेकी आवश्यकता बतलाई और उन्होंने अपने उस विचारकी घोषणा की, तब देश भरमें भारी निराशा छा गयी। १९२२ के फरवरी महीनेमें महात्माजीने अपने निश्चयकी घोषणा की थी और उस पर दिल्लीमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें विचार आरम्भ हुआ, तब महात्मा गांधीके उस निश्चय पर घोर असन्तोष प्रकट करनेके लिये महाराष्ट्रके डा० मुंजे तथा बंगालके श्री सेनगुप्त और श्री हरदयाल नाग प्रभृति प्रतिनिधियोंने महात्माजीके निश्चयके विरुद्ध प्रस्ताव पास करानेके लिये बड़ा जोर लगाया था। उस अवसर पर भी सच्चे और पक्के गांधी-भक्त डा० पट्टाभिने महात्माजी का समर्थन बड़ी योग्यताके साथ किया था।

यद्यपि महात्मा गांधीने अपनी असहयोगकी लड़ाई स्थगित कर दी थी, तो भी विदेशी नौकरशाहीने उन पर अदालतमें राजद्रोहका मामला चला कर, उन्हें जेलमें बंद कर दिया। आन्दोलनके विरुद्ध देश भरमें दमन-नीतिका जोर था और कांग्रेसके प्रायः सभी प्रसिद्ध नेता और कार्यकर्त्ता उसके शिकार बनाये जा चुके थे, इसलिये १९२२ ई० में महात्माजीके जेल चले जानेके बाद आन्दोलनको भारी धक्का पहुँचा। पीछे कांग्रसके भीतर दो दल बन गये, जिनमेंसे एक तो महात्मा गांधीकी असहयोगकी नीतिमें ही विश्वास प्रकट करता था और वह 'अपरिवर्त्तनवादी' नामसे प्रसिद्ध हुआ और दूसरा कौंसिलोंमें जानेकी नीति अपनाने पर जोर देता था, जिसे 'परिवर्त्तनवादी' नाम मिला था। प्रथम दलके नेतृत्वका भार श्रीयुक्त राजगोपालाचार्य पर था, जो आज भारतके प्रथम गवर्नर-जेनरल हैं। इनके प्रबल समर्थक डा० पट्टाभि थे। १९२२ के दिसम्बरमें गयामें कांग्रेसका अधिवेशन देशबन्धु चित्तरंजन दासके सभापतित्वमें हुआ और वहाँ पर अपरिवर्त्तनवादी दल और परिवर्त्तनवादी दलके बीच तुमुल संघर्ष हुआ। डा० पट्टाभिने श्रीयुक्त राजगोपालाचार्यका पूरा समर्थन किया और अंतमें उनके दलकी ही विजय रही। यहां पर

डा० पट्टाभिके ही लिखे कांग्रेसके इतिहाससे गया-कांग्रेसके सम्बन्धका एक अंश उद्धृत कर देना समीचीन जान पड़ता है, जिससे प्रकट हो जायगा कि हमारे चरित्र-नायक महात्मा गांधीके जेल चले जानेके पश्चात् भी किस तरह अपने महान् नेताके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन कर रहे थे—

"१६२२ की कांग्रेस सब तरहसे अपने ढंगकी निराली थी। प्रतिनिधियोंमें जिस बातको लेकर सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचा और सबसे अधिक मतभेद उपस्थित हुआ, वह कौंसिल प्रवेश सम्बन्धी समस्या थी। कलकत्तेवाली महासमितिकी बैठकने यह समस्या कांग्रेसके अवसरके लिये स्थगित कर दी थी। कांग्रेसको इस मामले और अन्य मामलोंपर निर्णय करनेके लिये पांच दिन तक बैठना पड़ा। कुछ लोग ऐसे थे जो समझते थे कि यदि कौंसिल-प्रवेशकी इजाजत दे दी गयी, तो असहयोग की योजना निष्फल हो जायेगी, इसलिये वे इस बातपर जोर देते थे कि कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी प्रतिबन्ध न उठाया जाय। कुछ ऐसे बुद्धिशाली व्यक्ति थे, जो कहते थे कि हम कौंसिलमें जाकर नयी ताक़त अख्तियार करेंगे, साथ ही नया स्थान ग्रहण करेंगे और इस ढंगसे शत्रुको पराजित कर सकेंगे। इसके बाद उन जोशीले राजनीतिज्ञोंकी बारी थी, जो कहते थे कि हम कौंसिलोंपर कब्जा कर लेंगे, मंत्रिमंडलों और मंत्रियोंको तहस-नहस कर देंगे, शेरको उसकी मांदमें जाकर पराजित करेंगे, रुपयेकी मंजूरी न देंगे और धिक्कारका प्रस्ताव पास करेंगे तथा सरकारी यन्त्रका चलना असम्भव कर देंगे। देशबंधु दासने जो भाषण पढ़ा, वह तर्क, अध्ययन और व्यावहारिक आदर्शवादमें अपनी जोड़ नहीं रखता था। यद्यपि असहयोगकी नावको दूसरी ओर ले जानेके विरुद्ध अनेक शक्तियां जुट गयीं, तो भी एस० श्रीनिवास आयंगर और पं० मोतीलाल-नेहरूकी प्रतिभाके बावजूद वह नाव अपने रास्ते पर चलती रही। एस० श्रीनिवास आयंगरने संशोधन पेश किया कि कांग्रेसी उम्मेदवारीके लिये खड़े हों, परन्तु कौंसिलोंमें स्थान ग्रहण न करें। पं० मोतीलाल

नेहरू कुछ शर्त्तोंके साथ इसपर रजामंद हो गये। श्रीनिवास आयंगरने एक वर्ष पहले मद्रास-कौंसिलसे इस्तीफा दे दिया था। अपना एडवोकेट जेनरलका पद और सी० आई० ई० की उपाधि त्याग दी थी और बधाइयोंकी वर्षाके मध्य आन्दोलनमें पैर रखा था। खिलाफतवाले जमीयतु उलेमा के प्रभावमें थे, जिसने फतवा निकाला था कि कौंसिल-प्रवेश ममनू (मना) है, हराम नहीं है। पर गयामें किसीकी नहीं चली। गांधीवादका चारों ओर दौर-दौरा था। हर किसीका यह विश्वास था कि कांग्रेसका अपने नेताके अनुपस्थित होते ही उसके प्रति पीठ दिखाना कृतघ्नता होगी।" डा० पट्टाभिने बताया कि जिस समय देशबन्धु दासने गया-कांग्रेसका सभापतित्व ग्रहण किया था, उस समय उनकी जेबमें वास्तवमें दो महत्वपूर्ण कागज थे। एक था सभापतिका भाषण और दूसरा था सभापति पदसे त्यागपत्र। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अपरिवर्त्तनवादियोंकी यहाँ विजय होनेपर भी वह विजय अधिक दिन नहीं टिक सकी।

सन् १९२३ ई० में कोकनाडामें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें डा० पट्टाभिने अपने खासे लम्बे भाषणमें बड़ी योग्यताके साथ असहयोग का मर्म समझाते हुए उन लोगोंकी खूब खबर ली थी, जो यह तर्क उपस्थित करते थे कि कौंसिलोंके भीतर भी असहयोगका प्रयोग हो सकता है। डा० पट्टाभिने कहा कि ऐसा कहना अपनी ही बातका खण्डन करना होगा। जब १९२४ के फरवरी महीनेमें बीमारीके कारण महात्मा गांधी जेलसे बिना शर्त्त छोड़ दिए गए और देशबन्धुकी स्वराज्य पार्टीको कौंसिलोंमें जानेकी सुविधा मिल गयी, तब अपरिवर्त्तनवादी लोग रचनात्मक कार्योंमें लग गये थे। हमारे चरित्र-नायकने भी १९२४ और १९२५ के वर्ष शिक्षा तथा अन्य रचनात्मक कार्योंमें व्यतीत किये थे। १९२५ ई० के सितम्बरमें जब महात्माजीने रचनात्मक कार्य-क्रमवाले दल से कौंसिल-प्रवेशवाले दलको अलग करके अखिल भारतीय चर्खासंघकी स्थापना करनेका निश्चय किया, तब डा० पट्टाभि भी उसी काममें जुट

गये ! १९२६ और १९२७ कौंसिलोंके कामवाले वर्ष थे, इसलिये डा० पट्टाभि उन दिनों जब कभी कांग्रेसकी कमेटियोंमें बोलते, तब कांग्रेसके मताधिकारके लिये सूतकी शर्त्त होने, कांग्रेसजनोंके लिये खद्दर पहिनना आवश्यक ठहराने आदि विषयों पर खूब जोर देते। पीछे १९२८ ई० में वह भी समय आया, जब १९२६ में कौंसिलोंमें गये हुए स्वराज्य-पार्टीवाले कांग्रेसजनों और उनके नेताओंको उनके भीतर रहनेकी व्यर्थता प्रकट होने लग गयी। पर डा० पट्टाभि तो सदा ही अपरिवर्त्तनवादी असहयोगी ही बने रहे।

पूर्ण स्वतन्त्रताकी मांग

१९२८ ई० में पूण स्वतन्त्रताकी माँग करनेकी आवश्यकता कांग्रेसके भीतर सभी लोगोंको बड़े जोरोंसे प्रतीत होने लगी थी। उस वर्ष कांग्रसका अधिवेशन कलकत्तामें पं० मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें हुआ था। वैसे पूर्ण स्वतन्त्रताके पक्षमें एक प्रस्ताव तो १९२७ के मद्रास वाले अधिवेशनमें ही पं० जवाहरलाल नेहरू पास करा चुके थे, इसलिये कलकत्ता कांग्रेसमें पूर्ण स्वतन्त्रताकी निश्चित रूपसे मांग करनेके लिये देश भरमें भारी हलचल मची हुई थी। उसके कुछ दिन पहले लखनऊमें जो सर्वदल सम्मेलन हुआ था, उसकी ओरसे पूर्ण स्वतंत्रताका एक घोषणापत्र प्रकाशित हुआ था, जिसपर सही बनानेवालों में एक डा० पट्टाभि भी थे। कलकत्ता कांग्रेसकी विषय-निर्वाचिनी समितिमें एक अप्रिय घटना घटी। पं० मोतीलालजी नेहरूकी किसी बातसे रुष्ठ हो पं० नीलकंठदास और उत्कलके प्रतिनिधि एक साथ ही पंडालसे उठकर बाहर चले गये। समितिका काम फिर भी इस तरह चलता रहा कि मानों कुछ हुआ ही नहीं। इससे डा० पट्टाभिके हृदयको बड़ा धक्का लगा और उन्होंने खड़े होकर पंडितजीसे यह अपील की कि किसीको भेजिये, जो उत्कलके प्रतिनिधियोंको समझा-बुझाकर वापस ले आये। इस अधिवेशनमें महात्मा गांधी खास

तौरपर निमंत्रित होकर सम्मिलित हुए थे और उस समय वे भी वहां उपस्थित थे। महात्माजीने तुरन्त कहा—"अब जब आपने सुझाव रखा है, तो अच्छा तो यह होगा कि आप ही जायें और उन लोगोंको समझानेका काम करें।" डा० पट्टाभिने प्रश्न किया कि क्या 'मुझे उत्कलके प्रतिनिधियोंसे यह कहनेका अधिकार दिया जाता है कि कांग्रेसके अध्यक्षका भेजा हुआ आया हूं ?' जब अच्छी तरह इस विषयमें खरा-खरी कर ली, तब डा० पट्टाभि बाहर गये और उत्कलके प्रतिनिधियोंको समझाकर फिर लौटा ले आये। इससे सभी लोगोंको बड़ा सन्तोष हुआ। इसके साथ ही जब हम यह सोचते हैं कि इस घटनाके एक दिन पहले स्वयं डा० पट्टाभिके साथ भी कुछ इसी प्रकारकी घटना घट चुकी थी, तब तो उनके इस प्रयत्नके लिये उन्हें साधुवाद देना, आवश्यक प्रतीत होता है। बात यह हुई थी कि पं० जवाहरलाल नेहरू उस समय समाप्त होनेवाले वर्षके लिये कांग्रसके जेनरल सेक्रेटरी थे और उनके साथ डा० पट्टाभिकी कुछ कहा-सुनी हो गयी थी। जब जवाहरलालजी उन्हें जवाब देने ही को थे, तब उनके पिताजीने हिन्दुस्तानीमें उनसे प्यारके साथ यह कहा—"जितना ही तुम जवाब दोगे, उतनी ही ज्यादा ये बड़-बड़ करेंगे; कुछ चिन्ता न करो।" कलकत्ता कांग्रेसने महात्माजीकी सलाहसे एक प्रस्ताव इस आशयका पास किया था कि १९२९ के अंत तक यदि ब्रिटिश सरकार भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दे देगी, तो कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रताको अपना ध्येय बना उसकी प्राप्तिके लिये प्रचंड आंदोलन छेड़ देगी।

गांधीजीका आंन्ध्र प्रान्तका दौरा

१९२९ के अप्रेलमें महात्मा गांधीने खद्दरके लिये आंन्ध्र प्रदेशका दौरा छः सप्ताह तक किया, जिसमें उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी और ढाई लाखसे अधिक रुपये संग्रह हुए थे। जब महात्माजी

आरंभमें ही मसलीपट्टममें गये, तब उन्होंने डा० पट्टाभिसे आंध्र देशमें खद्दरका काम सभालनेके लिये प्रस्ताव किया। लेकिन उन्होंने यह कह-कर हिचकिचाहट प्रकट की कि गंटूरके मित्र लोगोंको बुरा लगेगा। दूसरे दिन महात्माजीने फिर वही चर्चा छेड़ी और डा० पट्टाभिको यह दायित्व ग्रहण करनेके लिये दबाया।

कांग्रेसके अन्य कामोंमें

जुलाईमें कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीमें एक स्थान खाली होने पर उसके लिये डा० पट्टाभि मनोनीत किये गये। नवम्बर १६२६ में बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मामलोंको लेकर बंगालके कांग्रेसजनोंमें झगड़ा खड़ा हो गया था। उसकी जांच कर रिपोर्ट देनेके लिये डा० पट्टाभि नियुक्त किये गये। वहाँ उन्हें बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। वे २६ नवम्बरको जब कलकत्ता पहुंचे, तब झगड़ेके दोनों ही पक्षवाले उनसे अपने यहां ठहरनेका आग्रह करने लगे। पिंड छुड़ानेके लिये वे कलकत्ता बोर्डिङ्गमें जा टिके। वहां रातदिन उनके पास दोनों ही दलोंके एक-एक आदमी उपस्थित रहते थे। एक ओर श्रीयुक्त सेनगुप्तका दल था और दूसरी ओर सुभाष बाबू और श्री किरणशंकर रायका। छः बजे संध्याको जांचका कार्य आरम्भ हुआ और ग्यारह बजे रात तक बेरोक-टोक चलता रहा। तब सेनगुप्तके दलकी ओरसे श्री जे० सी० गुप्तने एक तारके विषयमें प्रश्न किया, जो सुभाष बाबूके दलकी ओरसे चट-गांव और दार्जिलिंगसे भेजा गया बताया गया। उस पर आपत्ति की गयी। कानूनकी दृष्टिसे विचार करनेके बाद यह कहा गया कि यदि तारका जो फार्म लिखकर डाकखानेमें दिया गया था, वह या उसकी प्रामाणिक नकल मिल सके, तो प्रश्न दाखिल किया जा सकता है। प्रामाणिक नकलें वहां थीं, इसलिये प्रश्नके लिये अनुमति दे दी गयी। लेकिन इस पर दूसरे ओरके लोग क्षुब्ध हो उठे। दूसरे दिन उन लोगोंने

जांचमें उपस्थित होना अस्वीकार कर दिया, यद्यपि पहले वे उपस्थित होनेको राजी हो चुके थे। दूसरे दिन सबेरेके पत्रोंमें उन्होंने यह घोषणा कर दी कि अब जांचमें हम लोग और अधिक भाग नहीं लेंगे, क्योंकि डा० पट्टाभि जानते ही नहीं कि जांच कैसे करनी होती है और वे श्रीकिरणशंकरकी पार्टीकी सलाह नहीं मानते। डा० पट्टाभिको उन्होंने मूर्ख-सा मानकर जांचमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया। दूसरे दल-वालोंसे यह अनुरोध किया गया कि वह इसका कुछ जवाब न दे, किन्तु उन लोगोंने संध्याके पत्रोंमें अपना जवाब निकाल दिया। डा० पट्टाभिने जांचका अपना काम एक पार्टीके लोगोंकी अनुपस्थितिमें भी जारी रखा। अपनी रिपोर्ट उन्होंने कांग्रेसके अध्यक्षके पास भेज दी। स्वयं पंडितजी झगड़ा निपटानेको कलकत्ता गये थे। पर वे भी सफल नहीं हुए और पीछे लाहौर कांग्रेसमें पं० मोतीलाल नेहरू, सुभाष बाबूके बीच कुछ कहा-सुनी भी हो गयी थी। वहां पर वर्किङ्ग कमेटीने अनुशासनकी कार्रवाई करनेके विचारसे श्रीकिरणशंकर रायसे जवाब तलब किया था। उन्होंने इसके लिये मुहलत मांगी और १९३० ई० के फरवरी महीने तक जवाब देनेको कहा था। इस बीचमें ही नमक-सत्याग्रह छिड़ गया और सुभाष बाबू तथा किरणशंकर राय उसके पहले ही राजद्रोहके एक मामलेमें जेल भेज दिये गये थे, इसलिये फिर वह बात जहांकी तहां ही रह गयी।

दक्षिणका अब्राह्मण आन्दोलन

राजनीतिक क्षेत्रकी आगेकी चर्चाको यहीं छोड़ अब हम एक ऐसे आन्दोलनपर आते हैं, जिसका उल्लेख करनेको रह गया है। यह दक्षिणका अब्राह्मण आन्दोलन है, जो उधर उसी प्रकारका प्रमुख आन्दो-रहा है, जैसे उत्तर भारतमें हिन्दु-मुसलिम प्रश्न, जो १९१६ ई० में लखनऊ कांग्रेसके अवसर पर कांग्रेस-मुसलिम लीग समझौते द्वारा हल किया जा चुका था। १९१७ ई० में भारतमंत्री मि० मांटेगू इस देशमें आये और

अपना काम करके चले जा चुके थे। १६१८ के नवम्बरमें मताधिकार-कमेटी काम कर रही थी। साम्प्रदायिकताका दौरदौरा था। उत्तरमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न हल हो गया, तो दक्षिणमें १६१७ के फरवरी महीनेमें अब्राह्मणोंका आन्दोलन आरंभ किया गया, जिसके प्रमुख नेता थे सर त्यागराज चेटी, डा० नायर, के० बी० रेड्डी नायडू और पनागलके राजा। इसके बाद ए० पी० पेट्रो भी जस्टिस पार्टीमें सम्मिलित हो गये। प्रश्न यह था कि दक्षिण भारतकी आबादीमें जो अब्राह्मण सन्तानवें प्रतिशत हैं, उन्हें पृथक् प्रतिनिधित्व और पृथक् निर्वाचानाधिकार मिलना चाहिये कि नहीं। डा० पट्टाभिने १६१७ के फरवरी महीनेके आरंभमें लिखा था कि रोगसे सामना करनेका सबसे अच्छा मार्ग यह है कि इसे बेरोक-टोक छोड़ दिया जाये। अब्राह्मणोंके आन्दोलनमें आखिर आपत्ति ही क्या हो सकती है, सिवा इसके कि यह एक अराष्ट्रीय आन्दोलन है, जिसमें जन-संख्याके तीन प्रतिशत लोग सम्मिलित नहीं हैं। अब्राह्मणलोग यह अनुभव करते हैं कि जीवन-संग्राममें, विदेशियोंकी नौकरी करनेमें, शासनाधिकारके प्रयोगमें, धन और पदवियां कमानेमें—वे पीछे हैं। यदि मान लिया जाय ब्राह्मण दस वर्षके लिये उन पदोंसे हट जायंगे, तो इससे अब्राह्मणोंको यह शिक्षा प्राप्त हो जायेगी कि जनसाधारणका हित अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त मध्य वर्गकी आकाक्षाओंको और आगे बढ़ानेसे नहीं सिद्ध हो सकता। वे देखेंगे कि वे भी एक सीमा तक ही बढ़ सकते हैं, जिसके बाद सिविलियन लोग उनसे कह देंगे कि बस यहीं तक, और आगे नहीं।

अब्राह्मणोंके इस आन्दोलनकी ओरसे उस समय दक्षिण भारतके नेताओं, साधारणतः पश्चिम भारत और मध्य प्रान्तके नेताओंको भी चिन्ता हो रही थी। इस आन्दोलनका तात्कालिक और खीझ पैदा करनेवाला कारण यह हुआ कि डा० नायर और 'इण्डियन पैट्रियट' के संपादक मि० मेनन इम्पीरियल कौंसिलके लिये खड़े होनेपर बारबार

हार जाते थे, जब कि टीपू सुल्तानके वंशज नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर बारम्बार उसके लिये चुन लिये जाते थे और निर्वाचित होनेवाले दूसरे सज्जन या तो सुब्बाराव पांतुलू, शास्त्री या शर्मा होते थे। १६१८ में बम्बईमें स्पेशल कांग्रेसमें इस आन्दोलनके सम्बन्धमें मि० रामचन्द्र राव, पं० मदनमोहन मालवीय और डा० पट्टाभि जब विचार कर रहे थे, तब डा० पट्टाभिने यह भविष्य-कथन किया था कि "वह दिन आयगा, जब दक्षिण भारतके ब्राह्मणोंको अब्राह्मणोंके आन्दोलनके दावे स्वीकार करने पड़ेंगे। कुछ दिनों तक ब्राह्मणोंने देशको बेचा था, अब अब्राह्मणोंको भी बेचने देना चाहिये, नहीं तो हम उन्हें संतुष्ट नहीं कर सकेंगे।"

१६१७ के सितम्बरमें आंध्रके अब्राह्मणोंकी एक कानफरेंस हुई। इसमें डा० पट्टाभिने वह प्रस्ताव पेश किया, जिसमें अब्राह्मणोंके लिये स्थान रिजर्व करनेकी बात थी। पीछे जब मि० मांटगू आये, तब डा० पट्टाभि और आंध्र देशके अन्य मेम्बरोंके डेपुटेशनने उनसे बातचीत की थी। पीछे पट्टाभिने साउथबरो—कमेटीके सामने आंध्र प्रान्तकी ओरसे बयान दिया था। उस समय उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि मांटेगूकी घोषणाका अर्थ जब मि० मांटेगूने शुद्ध दायित्वपूर्ण शासन बता दिया तब तो अवस्था ही एकदम बदल गई और राष्ट्रके लिये इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं रह गया है कि राष्ट्रीय सरकारको चलाने के लिये बिना अन्य किसी विचारके अच्छेसे अच्छे दिमागवालोंको आगे लाये। जो मिनिस्टर चुने जांय, वे राष्ट्रके सबसे योग्य प्रतिनिधियोंमें से हों और साम्प्रदायिक विषमताओंका समाधान आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा किया जाये। इसीसे पीछे १६१८ के अगस्तमें आंध्रकी जो दूसरी स्पेशल कानफरेंस की गयी, उसमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांगवाला वह निश्चय रद्द कर दिया गया, जो मि० मांटेगूके आनेके पहलेकी कानफरेंसमें हुआ था।

नमक-सत्याग्रह

जब १६३० ई० में नमक-सत्याग्रहका विचार महात्मा गांधी कर रहे थे और उसका निश्चय नहीं कर पाये थे, तभी डा० पट्टाभिने अपनी 'जन्मभूमि' पत्रिकामें कई लेख लिखे थे, जिनमें १८३६ ई० में नमकपर कर लगाये जानेका विशद वर्णन किया था। उन्होंने बताया कि १८३६ में एक नमक-कमीशन बैठा था, जिसने भारतमें अंग्रेजी नमककी बिक्रीमें खास भारतीय नमकपर कर लगानेकी सिफारिश की थी, इसीपर यह सत्याग्रह छिड़नेपर कितने ही लोगोंकी धारणा यह हुई कि हो-न-हो डा० पट्टाभिने ही महात्मा गांधीको नमक-सत्याग्रहका सुझाव दिया है। परन्तु यह सर्वथा निराधार धारणा थी, क्योंकि महात्मा गांधी तो दस वर्ष पूर्व ही उसके सम्बन्धमें विचार कर चुके थे। जब १६३० के फरवरी महीनेमें अहमदाबादमें वर्किङ्ग कमेटीकी बैठक नमक सत्याग्रहके विषयमें विचार करनेको बैठी थी, तब डा० पट्टाभि एकदम मौन रहे। बिदा होनेके समय महात्माजीने उनसे पूछा था कि आप कुछ बोले क्यों नहीं, तो डाक्टरने कहा कि मैं अपने हृदयके भीतर ही सारी बात दबा रहा था। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, कार्यक्रम ही अपनेको प्रकट करता चलेगा। जिस प्रकार एक मोटर गाड़ीका ड्राइवर अपनी गाड़ीको जब कुहासेके भीतर चलाता है, तो एक साथ ही वह उस सारे मार्गको नहीं देख लेता, जिसे पार करना है, बल्कि जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे ही वैसे उसे रास्ता दिखाई पड़ता रहता है। डा० पट्टाभि अहमदाबादसे लौटते समय बम्बई गये, जहाँ उन्होंने अपने वक्तव्यमें बताया कि महात्माजीने प्रश्नके उत्तरमें एक भविष्यवक्ताकी भांति यह कहा है कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य नमक-सत्याग्रहका सामना करनेके लिये कठोर दमन-नीति काममें लायेगा और हिंसाका प्रयोग कर जान और मालको नष्ट करेगा, तो उसके लिये उसे भारी हानि सहनी पड़ेगी। अपने लिखे कांग्रेस के इतिहासमें डा० पट्टाभिने इस सम्बन्धमें इस भांति प्रकाश डाला है—

"नमक-सत्याग्रहका इस प्रकार विकास होनेवाला था। गांधीजी नमकके किसी न किसी क्षेत्रमें जाकर नमक उठायेंगे। दूसरे नहीं उठायेंगे। अगर कोई पूछता—क्या हाथपर हाथ धरे बैठे रहें, तो यही उत्तर मिलता—'अवश्य। पर मैदानमें उतरनेके लिये तैयार रहो।' उन्हें तो आशा थी कि परिणाम तत्काल होगा। बल्लभ भाई तकको वे कूचमें साथ नहीं ले गये। केवल साबरमती आश्रमके साथियोंको ही उन्होंने साथमें लिया। वर्धा आश्रमवालोंको भी तैयारी करने और गांधीजीकी गिरफ्तारी तक ठहरनेका आदेश मिला। फिर तो एक साथ भारतवर्ष भरमें लड़ाई शुरू होनेवाली ही थी। गांधीजीकी गिरफ्तारीके बाद लोग जो चाहते, वह करनेको स्वतन्त्र थे। उन्हें दीख गया था कि उनके बाद भारतमें सर्वत्र यह आन्दोलन फैल जायेगा और खूब जोर पकड़ेगा। या तो जीत ही होगी या मर मिटेंगे। परन्तु जिस राष्ट्रने अंग्रेजोंका कभी बुरा नहीं चाहा, उसे वे मटियामेट नहीं कर सकते थे। ऐसा होनेपर तो साम्राज्य तक की जड़ें हिल जातीं। अहिंसा पर अटल रहनेका और कोई परिमाण हो ही नहीं सकता। लोग यदि यह पूछते कि सरकार बम बरसायेगी तो क्या होगा, तो उसका उत्तर यही था कि यदि निरपराध, स्त्री, पुरुष और बच्चोंको धराशायी कर दिया जाये, तो उन्हींकी राखमेंसे साम्राज्यको भस्म करनेवाली अग्नि पैदा होगी।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि डांडीकी प्रसिद्ध यात्रा आरंभ करनेके समय महात्माजीने यह कहा था कि 'या तो मैं स्वराज्य लेकर लौटूंगा नहीं तो मेरी लाश समुद्र पर उतराती देखी जायगी।'

अहमदाबादसे अपने घर लौटते ही डा० पट्टाभिने बड़ा जोरदार आंदोलन खड़ा कर दिया। कुछ लोग यह कहकर खिल्ली उड़ाते कि १९२१ के आंदोलनमें पट्टाभि जेल गये नहीं थे, अब देखेंगे। डा० पट्टाभि २१ अप्रेल १९३० को जेल गये। साढ़े दस वर्षसे चलनेवाली अपनी पत्रिका 'जन्मभूमि' को बंद कर दिया। गांधीजी अपने आश्रमके उन्नासी साथियोंको साथ ले दांडीकी कूच पर निकले थे, १२ मार्च १९३०

को। चौबीस दिनमें वहां पहुंचे थे और ५ अप्रेलको रातमें डेढ़ बजे गिरफ्तार कर वे मोटरमें बैठा कर हटाये गये और अन्तमें यरवदा जेलमें पहुंचाये गये। फिर क्या था, देशभरमें प्रचंड आन्दोलन आरंभ हो गया और नौकरशाहीने उसका दमन करनेके लिये अपने पशुबलका अधिकसे अधिक प्रयोग करनेसे कुछ भी उठा नहीं रखा। पर अन्तमें उसे जनताको संतुष्ट करनेके लिये आगे पग बढ़ानेको वाध्य हो जाना पड़ा और १२ नवम्बरको गोलमेज कानफरेंसकी बैठक लंदनमें आरंभ हुई। १९३१ ई० के जनवरी महीनेमें गांधीजी जब अन्य छब्बीस प्रमुख कांग्रेस-नेताओंके साथ छोड़ दिये गये और उधर जेलसे बीमारीके कारण छोड़े गये पं० मोतीलाल नेहरूका देहान्त हो गया, तब काँग्रेसके नेता यह सोचने लगे कि अब किस ढंगसे स्वराज्यकी लड़ाई आगे बढ़ायी जाये। उस समय डा० पट्टाभिने महात्माजीसे कहा कि आप वायसराय लार्ड इरविनको एक निजी पत्र क्यों नहीं भेजते महात्माजीको उनका सुझाव पसंद आया और उन्होंने वायसरायको पत्र लिख, मिलकर बात-चीत करनेकी इच्छा प्रकट की। लार्ड इरविनने तत्काल तार भेजकर स्वीकृति दी। महात्माजीका मौन दिवस सोमवार था। जब सवेरे डा० पट्टाभि उनसे मिलने गये, तो महात्माजीने लिखकर पूछा कि क्या आपको सबसे ताजी खबर मालूम है? यह लिखनेके साथ ही वायसरायका तार भी उनके हाथमें दे दिया। महात्माजीने यथासमय लार्ड इरविनसे बातचीत की और फलस्वरूप जब गांधी-इरविन-समझौता हो गया और दूसरी गोलमेज़ कानफरेंसमें कांग्रेसके प्रतिनिधित्वकी बात ठहर गयी, तब मार्चके अन्तमें कराचीमें कांग्रेसका जो अधिवेशन सरदार पटेलकी अध्यक्षतामें हुआ था, उसमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उस कानफरेंसके लिये किसे लंदन भेजना ठीक होगा, जब कि वर्किङ्ग कमेटीके अन्य सभी सदस्योंने पन्द्रह आदमियोंको भेजनेका सुझाव दिया था, डा० पट्टाभि ने यह प्रश्न किया कि लन्दन जानेके विषयमें महात्माजीका विचार क्या है? "आप वहां जाकर डीवेलेराकी भाँति इंगलैंडसे संधि कराना चाहते

हैं या एक शासन-विधानकी रचना करनेको जाना चाहते हैं ? यदि पहली बात है, तब तो आप अकेले ही जायँ और यदि दूसरी बात है, तो आप पन्द्रहकी संख्या निश्चित कर सकते हैं।" जवाब पहली बातके पक्षमें था। कराची कांग्रेसकी एक और बात उल्लेखनीय है। विषय-निर्वाचिनी समितिने एक सब कमेटी राष्ट्रीय झंडेके विषयमें नियुक्ति की थी, महात्माजीने डा० पट्टाभिको उसका संयोजक बनाया। इस सब-कमेटीने राष्ट्रीय झंडेमें लाल रंगके स्थान पर केसरिया रंग रखनेका निश्चय किया था, उसका श्रेय डा० पट्टाभिको कुछ कम नहीं है।

फिर जेल-यात्रा

महात्मा गांधी जब २८ दिसम्बर १९३१ को लन्दनकी गोलमेज कानफ्रेंससे खाली हाथ लौटे, तब ४ जनवरी १९३२ को फिर लड़ाई शुरू हो गयी। डा० पट्टाभि फिर दो वर्षके लिये जेल भेज दिये गये। ऊपरसे ग्यारह सौ रुपयेका जुर्माना भी। जब सितम्बर १९३३ में छूटकर आये, तब एक बार फिर छः महीनेके लिये जेलमें बादशाहके मेहमान बने और पाँच सौ रुपये जुरमानेके रूपमें देने पड़े, सो अलग। अन्तमें १९३४ के मार्चमें डा० पट्टाभि जेलसे छूटकर घर आये। ८ अप्रेलको इन्हें महात्माजीका एक पत्र मिला, जिसमें इनकी राय महात्माजीके उस सुझावके सम्बन्धमें पूछी गयी थी, जो उन्होंने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाको स्थगित कर पुनः कौंसिलमें जानेके लिये दी थी। १९३४ के अक्टूबरमें डा० पट्टाभि वर्किङ्ग कमेटी द्वारा नियुक्त विधान—सबकमेटीके सदस्य बनाये गये और पीछे तो वे प्रायःसभी ऐसी कमेटियों में रखे जाते थे। बम्बईमें राजेन्द्र बाबूने डा० पट्टाभिको फिर वर्किङ्ग कमेटीमें लिया।

'कांग्रेसका इतिहास'

१९३५ का वर्ष कांग्रेसके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा, क्योंकि इसी वर्षमें राष्ट्रीय महासभाकी स्वर्ण-जयन्ती मनायी गयी। इस अवसर के लिये डा० पट्टाभि द्वारा काँग्रेसके पचास वर्षोंका इतिहास तैयार कराके प्रकाशित किया गया। इस इतिहासका देश भरमें खूब प्रचार हुआ और शायद यही एक ऐसी पुस्तक है, जिसका भारतकी सभी भाषाओं—हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, उड़िया, तेलगू, तामिल, कनारी और मलयालम में अनुवाद हुआ है। बंगला भाषामें भी अनुवाद आरंभ होकर आधा हो भी चुका था, पर कोई प्रेसके कड़े कानूनके भयसे उसे छापनेको तैयार नहीं हुआ, इससे आज तक यह पुस्तक इस भाषामें नहीं प्रकाशित हो सकी। जर्मन भाषामें इस पुस्तकका अनुवाद निकालनेके लिये जर्मनीसे पत्र आया था, किन्तु यह पता नहीं कि फिर क्या हुआ। जब अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीके उत्साही मंत्री श्रीकृष्ण दासजीसे डा० पट्टाभिकी स्वीकृति कमेटीको दे देनेके लिये काँग्रेसका इतिहास लिखनेके निमित्त मिल गयी, तो उन्होंने एक पत्र लिखकर यह पूछा था कि पुस्तक देनेके लिये शर्त क्या होंगी ? तो डा० पट्टाभिने अपने स्वाभाविक ढंगसे उन्हें लिख दिया—'मैं देता हूँ—आप लेते हैं। और कोई शर्त्त नहीं। यह पुस्तक माताके चरणोंमें रखनेके लिये एक भक्तकी भेंट है। कोई कांग्रेसजन, कांग्रेस या अन्य किसीके हाथ ज्ञानकी बिक्री नहीं कर सकता। इसका उपयोग सभी भाइयोंकी सेवाके लिये होना चाहिये।" यह पत्र व्यवहार राजेन्द्र बाबूके सामने रखा गया और उन्होंने जुलाई १९३५ में वर्धामें हुई वर्किङ्ग कमेटीके सामने उसे रखा। वर्किङ्ग कमेटीने प्रसन्नता प्रकट करते हुए बा० राजेन्द्रप्रसादको पुस्तककी हस्तलिखित प्रतिको देखने और उसके प्रकाशनका प्रबन्ध करने का अधिकार दिया। इस प्रकार डा० पट्टाभिकी यह अमूल्य रचना जनताके सामने आयी और यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं

जान पड़ती कि इससे डा० पट्टाभिका नाम देशके सभी भागोंमें फैल गया।

कांग्रेसमें सुधार

१९३६ ई० में डा० पट्टाभि आंध्र प्रांतीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष निर्वाचित हुए और तभीसे वे इस पदपर वर्षों बने रहे हैं। आपको यह बिलकुल ही असह्य है कि कोई आदमी कांग्रेसमें रहते हुए भी विद्रोही का-सा आचरण करे, इसीसे अनुशासनके सम्बन्धमें आप कठोर समझे जाते हैं। जिनके विरुद्ध इन्होंने अनुशासनकी कारवाई की, वे स्वभावतः इनके विरोधी बन जायँगे। यही कारण है कि जब १९३७ ई० में फिर प्रादेशिक कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष निर्वाचित हुए, तब मुट्ठीभर सोशलिस्टों तथा अन्य स्वार्थी जनोंने उपद्रव करना चाहा, पर वे सफल नहीं हुए। आपके विरुद्ध विरोधियोंने कई पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित कीं, किन्तु 'सांच को आंच कहां ?' कोई पीठ पीछे इनके विरुद्ध चाहे जो कहे, पर इनके सामने अपनेको लाचार पाता है। आपकी अध्यक्षतामें संस्थाका संगठन सुदृढ़ और सारा काम व्यवस्थित ढंगसे होता है। जाँच और प्रचारकी ओर उचित ध्यान दिया जाता है। अपने इस पदकी हैसियतसे मद्रास की मिनिस्ट्रीपर जिस तरह आपकी दृष्टि सदा रहती है, उससे बड़ा लाभ है। बारदोलीसे आपने जो वक्तव्य निकाला था, उसीसे प्रकट हो जाता है कि पट्टाभि कांग्रेसकी संस्थाओंसे सब प्रकारकी बुराइयां मिटानेके लिये कितने सचेष्ट रहते हैं। उसमें आपने कांग्रेसको दोषरहित बनानेके लिये चिन्ता प्रकट करते हुए कहा है—"मैं आंध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष और वर्किंग कमेटीके मेम्बरकी हैसियतसे काम कर रहा हूँ। मुझे कांग्रेस जनोंमें अनुशासन-हीनता और भ्रष्टताके मामले देखनेको मिले हैं। यदि चुना जाऊँगा, तो मैं अपनी शक्ति अपने घरको ठीक करनेमें भी लगाऊँगा।" यहीं पर यह बता देना भी प्रासंगिक होगा कि डा० पट्टाभि १९४० के अप्रेल तक आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके

अध्यक्ष बने रहे, जब कि श्रीयुत टी० प्रकाशम्के मिनिस्टर पदको छोड़ने के पश्चात् इन्होंने अपने पदका भार उन्हें सौंप दिया। डा० पट्टाभि सीलोन जाकर वहांके लोगों और भारतवासियोंमें मेलजोल स्थापित करने के लिये प्रयत्न करनेको नियुक्त किए गए थे। किन्तु पीछे कांग्रेसके मन्त्रि-मंडलमें परिवर्तनके कारण यह काम पं० जवाहरलालको सौंपा गया। १९३८ के नवम्बरमें डा० पट्टाभि आन्ध्र यूनिवर्सिटीके सेनेटके लिये मेम्बर मनोनीत किये गये, किन्तु अपने ऊपर इतने अधिक सार्वजनिक कार्योंका भार होनेके कारण इन्होंने यह नया भार लेनेमें अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। पीछे इन्हें यूनिवर्सिटीका वाइस-चांसलर बनानेका भी विचार किया गया, किन्तु इन्होंने लाचारी ही प्रकट की।

देशी राज्योंका आन्दोलन

१९३६ में अखिल भारतीय देशी राज्य-प्रजा-कान्फरेन्स कराँचीमें हुई थी। उसके अध्यक्ष हमारे चरित्र-नायक ही चुने गये। तबसे तीन वर्ष तक आप ही उसके अध्यक्ष-पद पर विराजमान रहे। फरवरी १९३९ में इन्होंने इस पदका भार पं० जवाहरलालको सौंपा। अपने तीन वर्षके कार्यकालमें डा० पट्टाभिने पश्चिम भारतके और वैसे दक्षिण भारतके देशी-राज्योंका तूफानी दौरा किया। मैसूर राज्यमें भी ये गये थे, पर हैदराबादमें प्रतिबंधके कारण नहीं जा सके थे। सन् १९३९ में कान्फ्रेन्सकी ओरसे जो स्पेशल विवरण प्रकाशित हुआ था, उसमें मंत्रीकी रिपोर्टमें इनको उन सेवाओंका सविस्तर विवरण है, जो इन्होंने देशी राज्योंके निवासियोंकी की है। उसीके कुछ अंश हम यहां दे रहे हैं :—

"देशी राज्य-प्रजा कानफरेन्स १९३६ में कराचीमें हुई। डा० पट्टाभि सीतारमैया उसके अध्यक्ष थे। इस तरह भारतीय राजनीतिके सुन्दर अनुभवोंका ही लाभ हमें नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने अपना समय और

शक्ति भी हमें दी। वे प्रथम श्रेणीके प्रसिद्ध नेता हैं और हमारे लिये जितना उन्होंने किया है, उतना उनके पहले कोई अध्यक्ष नहीं कर सका था। देशी राज्योंका निरन्तर दौरा करते हुए उन्होंने हमारे लिये बहुत काम किया है। अन्यत्र भारी कामोंमें फँसे रहने पर भी, वे हमारे कामोंके लिये सदा तैयार देखे गये। कराँचीमें उन्हें अपना अध्यक्ष बना कर कानफरेन्सने बहुत लाभ उठाया है। जब वे कार्यभार पंडित जवाहरलाल नेहरूको सौंप देंगे, तब भी पूर्ववत् हमारे काममें रस लेते रहेंगे, इसकी हमें पूरी आशा है। कराँचो अधिवेशनके सामने भारी काम था। सभी ओरसे हमारी सहायताकी मांग इतनी अधिक थी कि हमारी संस्था धन और जन दोनों ही के अपने साधनोंके बल पर उसकी पूर्ति नहीं कर सकती थी। किन्तु कराँचीमें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। अध्यक्ष और मंत्रीने देशके भीतर उत्तरसे दक्षिण और पूरबसे पश्चिम तक दूर-दूरकी विस्तृत यात्राएँ कीं। प्रकाशनका कार्य मुख्य था और डा० सीतारमैया तथा श्रीबलवंतराम मेहता— दोनों हो ने प्रशंसनीय ढंगसे इस कार्यको सम्पन्न किया है।

"हमारी कानफरेंसके संगठनका कार्य अपने हाथमें लिया है और उत्तरी, पूर्वी तथा मध्यवर्त्ती राज्योंके क्षेत्रोंमें इसने अपनी काफी दृढ़ नींव जमा ली है। अध्यक्षको उड़ीसा राज्य-कानफरेंसके अधिवेशनकी अध्यक्षता करनेका अवसर मिला है, जो कटकमें कई वर्ष बाद हुई है। उड़ीसाके राज्योंमें अवस्थाएँ गलतीसे दिनपर दिन बिगड़ती जा रही थीं, जबसे कि ये राज्य उड़ीसाके कमिश्नरके अधिकार-क्षेत्रसे निकालकर सम्बलपुरके पोलिटिकल एजेंटके अधिकार-क्षेत्रमें कर दिये गये। इनमेंसे बहुतसे राज्योंमें निश्चित रूपसे कुशासन है, जहां जनता पर तरह-तरहके कर लाद दिये गये हैं। जनताकी शिकायतोंपर पोलिटिकल डिपार्टमेंटका ध्यान कतई नहीं जाता है और हाल यह बताया जाता है कि वह राज्यकी भीतरी शासन-व्यवस्थामें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उड़ीसाके कुछ राज्योंमें व्यापारके इजारे, बेगार, करों और

भेंटों तथा अन्य प्रकारकी गैरकानूनी वसूलियाँ, व्यक्तियोंके उत्पीड़न आदि साधारण संकटोंके सिवा कितनी ही ऐसी बातें होती बतायी जाती हैं, जिनका बयान नहीं किया जा सकता। इन सब बातोंकी जाँचके लिये तीन सज्जनोंकी एक कमेटी नियुक्त करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई है। ठीक उसी समय ८ से १० मई (१९३७) तक अमृतसरमें पंजाब देशीराज्य-प्रजा कानफ्रेंस हुई। यह दुःखकी बात है कि यद्यपि पटियालाके मामलोंकी जांचके लिये नियुक्त सब-कमेटी अबसे बहुत पहले अपना काम पूरा कर चुकी है, तो भी उसकी रिपोर्टको अभीतक छापना सम्भव नहीं हुआ है। (अब वह रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी है) फिर भावनगरमें देशीराज्य-प्रजा कानफरेंस और राजकोटमें कई महीने पहले काठियावाड़ राजनीतिक कानफरेंस हुई थी। इन कानफ्रेंसोंके सम्बन्धमें और इनके बाद जो काम हुआ है, उसकी मार्केकी विशेषता यह है कि काठियावाड़के उन कार्यकर्त्ताओंमें पूरा मेलजोल स्थापित हो गया है, जो पहले अलग-अलग दलोंमें बंटे हुए थे। मेलजोलका यह कार्य महात्मा गांधीके उत्साहवर्द्धक पथ-प्रदर्शनमें हुआ है। कटकवालों ने अपनी कानफरेंसका अधिवेशन श्री बिहारीलाल अनंताके सभापतित्व में किया है, जो कानफ्रेंसके पथ-प्रदर्शनके लिये ही लन्दनसे इतनी दूर चलकर आये थे। विभिन्न राज्योंके भीतर रहनेवाले लोगोंमें आज जागृति पैदा हो गयी है, इसमें कोई सन्देह नहीं है और कुछ राज्योंमें तो उनके भीतर ही दो कानफ्रेंसें की गयी हैं। इसका जो महत्व है, वह घटाया नहीं जा सकता। यह भी बड़ी उल्लेखनीय बात है कि महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल और आंध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंने अपने-अपने प्रान्तोंमें राज्योंके निवासियोंके कार्यका संग्रह करना आरम्भ कर दिया है।

"कराचीवाले अधिवेशनके समयसे देशी राज्योंकी समस्याओंको इतना महत्व प्राप्त हो गया है, जिसकी कल्पना उस समय मुश्किलसे की गयी होगी। हम यह स्वीकार करेंगे कि कराचीमें हमें इसमें भारी शंका

थी कि भारतीय संघके भीतर देशी राज्योंके प्रजा जनोंको भी उचित स्थान प्राप्त होगा या नहीं ?"

देशी राज्य और कांग्रेस

"१६३७ के अक्टूबरमें कलकत्तामें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा मैसूर सम्बन्धी प्रस्ताव होनेके समयसे देशी राज्यों और कांग्रेसके प्रश्नको और भी अधिक महत्व प्राप्त हो गया है।"

जैसा कि ऊपर कहा गया है, करांचीवाली कानफरेंसके पश्चात् उसके अध्यक्ष डा० पट्टाभिने महाराष्ट्र, कर्नाटक और काठियावाड़की देशी रियासतोंका विस्तृत दौरा किया था। कुछ स्थानोंपर इन्होंने देशी राजाओंसे भी मिलकर बातचीत की और उन्हें उपदेश दिया कि समय के साथ चलें और उन्नतिकी ओर कदम बढ़ायें। इन्होंने सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा संचालित संस्थाओंका निरीक्षण किया और उन्हें स्फूर्त्तिदायक संदेश दिये, साथ ही देशी राज्योंकी वस्तुस्थितिके सम्बन्धमें आंकड़े संग्रह किये। फेडरेशन, दायित्वपूर्ण शासन एवं मौलिक अधिकारों के सम्बन्धमें कितनी ही विराट् सभाओंमें डा० पट्टाभिने व्याख्यान दिये और जनता तथा कार्यकर्त्ताओंसे अनुरोध किया कि प्रादेशिक संगठनों और कानफ्रेंसकी केन्द्रीय संस्थाको सुदृढ़ बनायें। आपने राज्योंके निवासियोंसे हजारोंकी संख्यामें कांग्रेसमें सम्मिलित हो जानेके लिये अपील करते हुए कहा कि इस तरहसे वे भी देशी राज्योंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी नीतिको प्रभावित करें।

दक्षिणके राज्योंके निवासियोंकी कान्फ्रेंस करांचीमें ५ और ६ जून (१६३७) को श्री नरीमैनकी अध्यक्षतामें हुई। उसने एक प्रान्तीय आफिस स्थापित किया, विधान बनाया और महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अधिकारियोंका सहयोग प्राप्त किया। उस संस्थाने अपना कार्य बड़ी तत्परतासे प्रारम्भ किया।

उड़ीसाके देशी राज्योंके प्रजाजनोंकी प्रथम कान्फ्रेंस जून १९३७ ई० में डा० पट्टाभिकी अध्यक्षतामें हुई। अपने भाषणमें इन्होंने कहा कि ये देशी राज्य भारतके अलस्टर बन गये हैं, जिनके भीतर प्रगतिशील विचार लोकप्रिय नहीं बन सकते, राजनीतिक आदर्श सिर नहीं उठा सकते और राजनीतिक आन्दोलनोंका गला घोंट दिया जाता है। ये ब्रिटिश भारतके लोगोंके लिये, संसारके विदेशी राज्योंसे भी अधिक बुरे हैं। प्रान्तोंके लोग इन राज्योंमें विदेशी जैसे समझे जाते और उनके साथ तद्वत् व्यवहार होता है। इन राज्योंके भीतर इनके निवासी भी गुलामोंसे अच्छी दशामें नहीं हैं। उन्हें नागरिकताके मौलिक अधिकार नहीं प्राप्त हैं, दायित्वपूर्ण शासनकी तो बात ही दूर रही, उनकी प्रतिनिधि संस्थाएं भी नहीं हैं। उनसे जबर्दस्ती सब प्रकारकी बेगार ली जाती है और उनके साथ गुलामोंका-सा वर्त्ताव किया जाता है। यह आशा कैसे की जा सकती है कि स्वतन्त्रताकी चाह उन बनावटी सीमाओंको पार नहीं कर सकेगी, जो खड़ी कर रखी गयी हैं, जैसे यह आशा नहीं की जा सकती कि बाढ़, अकाल, तूफान और भूडोल इन राज्यों और प्रान्तोंकी सीमाएं पार नहीं करेंगे।

कोचिन राज्य-प्रजा कानफरेंस २० नवम्वर (१९३७) को डा० पट्टाभि की अध्यक्षतामें हुई। एक सप्ताहके बाद त्रावणकोर राजनीतिक कानफरेंस २७ नवम्बर (१९३८) को डाक्टर साहबकी अध्यक्षतामें हुई। फरवरी १९३८ में हरिपुरा कांग्रेसकी विषय-निर्वाचिनी समितिमें देशी राज्योंके प्रजाजनोंके सम्बन्धमें पाँच घंटे तक गरमागरम वाद-विवाद होनेके बाद डा० पट्टाभिके सुझावके अनुसार एक प्रस्ताव पास हुआ। यद्यपि कांग्रेसके उस प्रस्तावसे डाक्टर साहब सर्वांशमें सहमत तो नहीं थे, किन्तु एक अनुशासन-पालक कांग्रेसजनकी भांति उन्होंने उसे सच्चे दिलसे स्वीकार किया था। दक्षिण भारतके राज्योंका दौरा करके जब डा० पट्टाभि मद्रास गये, तो नगरकी आन्ध्र महासभा एसोसियशनकी ओरसे आपके स्वागतार्थ भारी समारोह हुआ, जिसमें आन्ध्रका

पृथक् प्रान्त बनानेके आन्दोलनके लिये सबोंने उनकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की।

त्रिपुरी कांग्रेसके लिये उम्मेदवारी

१९३८ ई० का कांग्रेसका अधिवेशन हरिपुरामें श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोसके सभापतित्वमें हुआ और १९३९ का अधिवेशन त्रिपुरीमें करना निश्चित हुआ। उसके लिये सभापति कौन चुना जाये, यह प्रश्न कांग्रेसके सर्वोच्च नेताओंके सामने था। सभापतिके निर्वाचनके लिये वर्षोंसे यह प्रथा-सी बन गयी थी कि वे ही अपने सहकारियोंमेंसे जिसे उपयुक्त समझते थे, उसके लिये सिफारिश कर देते थे और उसीको आँख बन्द करके डेलीगेट लोग चुना करते थे। दूसरी प्रथा यह थी कि कोई सभापति एक वर्षसे अधिक इस पदपर नहीं रहता था, जब तक कोई असाधारण परिस्थिति न हो। परन्तु सुभाष बाबूके पहले पं० जवाहरलाल नेहरू लगातार दो बार सभापति चुने जा चुके थे—पहले तो लखनऊ कांग्रेसके और उसके बाद फैजपुरवाले अधिवेशनके, इसलिये हरिपुरा कांग्रेसकी अध्यक्षता करनेवाले सुभाष बाबूके अनुयायियों और प्रशंसकों की इच्छा त्रिपुरी कांग्रेसका भी अध्यक्ष उन्हींको बनाने की थी। जब युवकोंके एक महान नेता जवाहरलालजी लगातार दो अधिवेशनोंके अध्यक्ष बनाये जा चुके, तो इसी प्रकार दूसरे युवक नेता सुभाष बाबूको भी त्रिपुरी कांग्रेसका सभापति बनाकर क्यों न उन्हें सम्मानित किया जाये, यह तर्क था उनके समर्थकोंका।

कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीकी बैठक १९३९ के जनवरी महीनेमें बारदोलीमें हुई। उसमें सम्मिलित नेताओंने विचार किया और मौलाना अब्बुलकलाम आजादको त्रिपुरी कांग्रेसके अध्यक्ष पदके लिये पसंद किया। डा० पट्टाभिके लिये जैसे ही किसीने प्रस्ताव किया, उन्होंने अपना नाम मौलाना आजादके पक्षमें लौटा लेनेकी बात

डा० पट्टाभि का जीवन-चरित
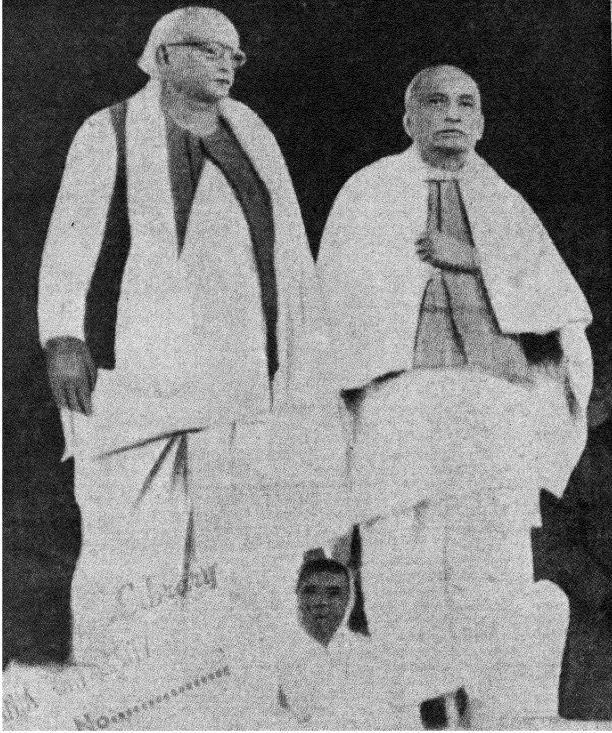
राष्ट्रपति डा० पट्टाभि सीतारमैया और भारतके उपमंत्री
सरदार बल्लभभाई पटेल
(दिल्लीकी एक सार्वजनिक सभामें लिया गया चित्र)

कही। परन्तु मौलाना आजादने भी महात्मा गांधीसे अपनी अनिच्छा प्रकट की, जिसके लिये उन्होंने अपनी अवस्थताके साथ ही ये दो कारण उपस्थित किये—(१) उच्च पदका भार न होनेसे साम्प्रदायिक ऐक्यके लिये मैं अधिक अच्छी तरह काम कर सकूंगा। (२) कांग्रेस पार्लमेन्टरी कमेटीका मेम्बर बना रहना मेरे लिये आवश्यक है, क्योंकि थोड़े ही समय बाद चुनावके समय पर कांग्रेस सरकारको मुसलमानों और अल्प संख्यकोंके हितार्थ महात्मा गांधी द्वारा तैयार किये हुए गुरके अनुसार विशेष रूपसे उद्योग करनेकी आवश्यकता पड़ेगी।

उपर्युक्त बातोंके सिवा यह अनुभव किया गया कि आंध्र देशको इस पदका भार कभी नहीं सौंपा गया है और दूसरे डा० पट्टाभि देशी-राज्य-प्रजा कानफ्रेंसके अध्यक्ष हैं, इसलिये भी उनका चुना जाना ठीक होगा। तदनुसार मौलाना आजादने एक वक्तव्य निकालते हुए अपनी उम्मेदवारी लौटा ली। अपने इस वक्तव्यमें उन्होंने अपनी असमर्थता के कारण बताते हुए अन्तमें यह लिखा था—"मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि डा० पट्टाभि सीतारमैयाके नामका प्रस्ताव किया गया है। डा० पट्टाभि ऐसा सोचकर अपनी उम्मेदवारी लौटा लेने ही को थे कि मैं अपना नाम नहीं लौटाऊंगा। लेकिन यह कहते हर्ष होता है कि मैंने उन्हें मना लिया है कि वे अपना नाम न लौटायें। वे कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीके एक पुराने मेम्बर हैं और अथक कार्यकर्त्ता हैं। मैं डेलीगेटोंसे सिफारिश करता हूं कि वे उन्हें ही चुनें। मैं आशा करता हूं कि वे सर्वसम्मतिसे निर्वाचित किये जायेंगे।"

कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीके सदस्य—सरदार बल्लभाई पटेल, बा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री जयरामदास दौलतराम, आचार्य कृपलानी, श्री शंकरराव देव और श्री भूलाभाई देसाईके हस्ताक्षरोंसे एक वक्तव्य २४ जनवरीको निकाला गया, जिसमें इस बातके लिये खेद प्रकट किया गया था कि कांग्रेसके सभापतिका निर्वाचन अब भी सर्वसम्मत्तिसे नहीं हो पा रहा है। दुःख है कि मौलाना आजादने अपना नाम वापस

ले लिया। उन्होंने हममें से कुछके साथ परामर्श कर अपनी उम्मेद-वारी डा० पट्टाभिके पक्षमें वापस ली है। हमारा विश्वास है कि डा० पट्टाभि इस पदके लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। ये वर्किङ्ग कमेटीके एक सबसे पुराने मेम्बर हैं। इन्होंने बड़ी सेवाएं की हैं। आशा है कि डेलीगेट लोग इन्हें पसन्द करेंगे। सुभाष बाबूके साथियोंसे हमारा अनुरोध है कि वे उनसे कहें कि अपने निश्चयपर फिरसे विचार करें और डा० पट्टाभिका सर्वसम्मत निर्वाचन होने दें।

सर्वसम्मत निर्वाचन प्राप्त करनेके जितने भी प्रयत्न किये गये विफल हुए। अन्तमें जनताके सामने त्रिपुरी कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिये दो नाम रहे—एक तो डा० पट्टाभिका और दूसरा श्री सुभाषचन्द्र बोसका। दोनोंके वक्तव्य निकले और उनके समर्थकोंने अपने-अपने पक्ष में धुंआधार प्रचार किया। इस निर्वाचनको लेकर बड़ा ही अप्रिय विवाद खड़ा हो गया। नियमानुसार वोट पड़े और सुभाष बाबू डा० पट्टाभिकी अपेक्षा दो सौ तीन वोट अधिक पाकर सफल हुए। दोनोंके पक्षमें विभिन्न प्रान्तोंके वोट जिस प्रकार पड़े थे, वे निम्न आंकड़ोंसे प्रकट हैं—

	सुभाष बाबू	डा० पट्टाभि
तामिल नाड	११०	१०२
आंध्र	२८	१८१
केरल	८०	१८
बर्मा	८	६
संयुक्त प्रांत	२६६	१८५
उत्कल	४१	६६
गुजरात	५	१००
दिल्ली	१०	५
महाराष्ट्र	७७	८६
बंगाल	४०४	७६

	सुभाष बाबू	डा० पट्टाभि
पंजाब	१८२	८६
विदर्भ (बरार)	११	२१
बम्बई शहर	१२	१४
बिहार	७०	१६७
नागपुर	१२	१७
आसाम	३४	२२
अजमेर और मेरवाड़ा	२०	६
कर्नाटक	१०६	४१
सिंध	१३	२१
महाकोशल	६७	६८
सीमा प्रांत	१८	२३
कुल	१५८०	१३७०

निर्वाचनका परिणाम प्रकट होनेपर ३१ जनवरीको महात्मा गांधीने जो वक्तव्य निकाला था, उसमें निर्वाचनमें सुभाष बाबूकी निश्चित विजयको स्वीकार करते हुए यह कहा था—"क्योंकि मौलाना साहबके हट जानेपर मैंने डा० पट्टाभिसे आग्रहपूर्वक कहा था कि वे अपना नाम उम्मेदवारीसे न लौटायें, यह हार उनकी अपेक्षा मेरी अधिक है।" निर्वाचनमें सुभाष बाबूको सफलता तो प्राप्त हो गयी, पर अत्यधिक बीमार होनेके कारण त्रिपुरी तक जाकर भी वे कांग्रेसके अध्यक्षका आसन नहीं ग्रहण कर सके। वोट पड़नेके पूर्व महात्मा गांधी एकदम मौन रहे थे और उन्होंने न तो डा० पट्टाभिके समर्थनमें कोई बात सार्वजनिक रूपमें कही थी और न सुभाष बाबूके विरुद्ध ही। त्रिपुरी कांग्रेसमें और उसके पश्चात् जो गृहयुद्ध सुभाष बाबू और उनके समर्थकों तथा वर्किङ्ग कमेटीके अन्य नेताओं और उनके समर्थकोंके बीच छिड़ा था और जिस तरह अन्तमें सुभाष बाबूने पद-त्याग किया, उसका वर्णन यहां अप्रासंगिक होगा।

हरिपुरा कांग्रेसके बाद डा० पट्टाभि वर्किङ्ग कमेटीमें नहीं लिये गये थे और यह देख लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, जब १९४० की रामगढ़ कांग्रेसके बाद उसके अध्यक्ष मौलाना आजादने भी उन्हें कमेटीमें नहीं लिया था। यह बात अवश्य देखी गयी कि मौलाना उन्हें वर्किङ्ग कमेटीकी प्रत्येक बैठकमें उपस्थित होनेके लिये निमन्त्रण भेजा करते थे। सेठ जमनालालजी बजाजका देहावसान हो जानेपर उनके रिक्त स्थानपर डा० पट्टाभि पुनः वर्किङ्ग कमेटीके मेम्बर बनाये गये।

युद्ध-कालमें
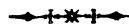
१९३९ के सितम्बरमें यूरोपमें युद्ध छिड़ गया। महात्मा गांधीका विचार हुआ कि इसके बाद पं० जवाहरलाल नेहरू कांग्रेसके अध्यक्ष पदपर हों। लेकिन वर्किङ्ग कमेटी एक मतसे इसके विरुद्ध पाई गई। डा० पट्टाभिने कहा कि वर्किङ्ग कमेटीका मत एक ओर छोड़ दिया जाये, तब भी तो कांग्रेसके विधानके अनुसार ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता, क्योंकि बीचमें खाली होनेवाले स्थानकी पूर्त्ति करनेका अधिकार वर्किंग कमेटीको नहीं, बल्कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको प्राप्त है। विधानकी पड़ताल करनेसे डा० पट्टाभिकी बात ठीक निकली। फिर भी कोई राह तो निकालनी ही थी, क्योंकि ऐसे सङ्कट-कालमें महात्मा गांधीको कांग्रेसके अध्यक्षके आसनपर नेहरूजी जैसे कुशल राजनीतिज्ञ और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके पूरे जानकारका होना अत्यंत आवश्यक प्रतीत हो रहा था। डा० पट्टाभिने तब यह सुझाव दिया कि इस कार्यके लिये एक युद्ध सब-कमेटी बनायी जाये, जिसके अध्यक्ष नेहरूजी नियुक्त हों। अपने इस पदकी हैसियतसे वे आवश्यक होनेपर वायसरायसे बातचीत कर सकते हैं। यह सुझाव सभीको पसंद हुआ और इसीके अनुसार काम हुआ।

१४ जून १९४० को जब फ्रांसका पतन हुआ, तब महात्मा गांधीके मस्तिष्कमें एकाएक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। इसके बाद वे एक

अहिंसात्मक राज्यकी कल्पना करने लगे और जनताके विचारमें परिवर्त्तन लानेके उद्देश्यसे आमरण अनशनकी बात सोचने लग गये। उनके मस्तिष्ककी वह अवस्था १९४० के सितम्बर तक रही। इस बीच डा० पट्टाभि सीतारमैया आदि महात्माजीको यह जना रहे थे कि कांग्रेसने कभी एक अहिंसात्मक राज्यका ध्यान नहीं किया। उन्होंने बताया कि किस तरह १९३४ ई० में बम्बई वाले अधिवेशनमें जब महात्माजीने शांतिपूर्ण और उचित साधनोंके स्थानपर 'सत्य और अहिंसात्मक' शब्द रखानेका प्रयत्न किया था, तो विषय-निर्वाचिनी समिति द्वारा वह अस्वीकृत हो गया। उसके और पहले स्वयं महात्माजीने नमक-सत्याग्रह शुरू करनेके ठीक पहले जो पत्र १ जनवरी १९३० को लार्ड इर्विनके पास भेजा था, उसमें और 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता मि० स्लोकोम्बको मई १९३० ई० में अपनी जो मांगें दी थीं, उनमें भी हथियार रखने और उनका प्रयोग करनेके अधिकारकी मांग की थी। इसी प्रकार नवम्बर १९३० ई० में दूसरी गोलमेज कांफ्रेंसमें महात्माजीने यह कहा था कि भारतमें जो सेना है, वह राष्ट्रीय नहीं है, इसलिये इसे भङ्ग कर देना चाहिये और फिरसे सेनाका निर्माण होना चाहिये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ये सभी बातें अकाट्य थीं, यद्यपि किसी उपयुक्त अवसरपर यदि राष्ट्र एक अहिंसात्मक राज्य बनाना चाहे, तो ये बातें उसे ऐसा करनेसे रोक नहीं सकती हैं।

महात्माजीकी सेवामें

जिस समय घटनाचक्र बड़ी तेजीसे चल रहा था, उस समय कांग्रेसके लिये युद्धोद्योगके प्रतिरोधमें कोई प्रकट कार्य करना आवश्यक हो गया। जब महात्माजी व्यक्तिगत सत्याग्रहकी लड़ाई छेड़ना चाहते थे और उसका उद्देश्य बताना चाहते थे, तब डा० पट्टाभिने यह सुझाव दिया कि युद्धोद्योगके सम्बन्धमें विचार प्रकट करनेकी स्वतंत्रताके लिये इसे छेड़नेकी

आवश्यकता है। महात्माजीने इसको स्वीकार कर लिया और तदनुसार ही एक समितिने उद्देश्यके लिये प्रतिज्ञापत्रका मसविदा तैयार कर लिया। साधारण अवस्थामें तो कांग्रेसके अन्य किसी निर्वाचित सदस्यकी भांति डा० पट्टाभिको भी कानून तोड़कर जेल जाना चाहिये था, लेकिन एक महत्वपूर्ण घटना घट गयी। एक रात्रिमें महात्माजीने वर्किङ्ग कमेटीकी बैठकके बाद उन्हें बुलाकर अपने साथ सेवाग्राम चलनेके लिये कहा। राहमें उन्होंने त्रावंकोरकी चर्चा छेड़ी, जिसके विषयमें वे बहुत चिन्तित हो रहे थे। महात्माजीने डाक्टरजीसे गत्यवरोधमें हस्तक्षेप करनेका अनुरोध किया, क्योंकि राज्यके दीवान सर सी० पी० रामस्वामीसे उनकी मित्रता थी, पट्टाभिने जवाबमें कहा कि व्यक्तिगत सत्याग्रह छिड़ रहा है, तब मैं क्योंकर अपना समय उस ओरसे हटाकर इस काममें लगा सकता हूँ? महात्माजीने स्पष्ट शब्दोंमें जोर देकर कहा कि जब तक त्रावंकोरका मामला न निपट जाये, तब तकके लिये आप रुकें। डा० पट्टाभिने वैसा ही किया। उनके हस्तक्षेपका तात्कालिक उद्देश्य पूरा हो गया और त्रावंकोर राज्यके लिये विधानका ढाँचा तैयार कर लिया गया। उसके सम्बन्धकी घोषणा होनेको ही थी कि २६ मार्च १९४१ ई० को डा० पट्टाभि गिरफ्तार कर लिये गये और १ नवम्बर तक नजरबन्द रखे गये। छूटनेके बाद महात्माजीने उन्हें वर्धा बुला लिया और वहाँ बारह दिन तक रोक रखा, जब कि महात्माजी श्री भूलाभाई देसाई और श्री राजगोपालाचार्य के उन तर्कोंका उत्तर देनेमें लगे हुए थे, जो व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रखनेके विरोधमें उपस्थित किये गये थे।

'भारत छोड़ो' आंदोलनमें

१९४२ के मार्चमें सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारत आये। उनकी इस यात्राका उद्देश्य कांग्रेसके साथ समझौतेके लिये बातचीत करना था। अखिल भारतीय देशी राज्य-प्रजा कानफरेंसके उपाध्यक्षकी हैसियतसे

डा० पट्टाभि देशी राज्योंके लोगोंका मामला उनके सामने उपस्थित करनेके लिये नियुक्त किये गये। सर क्रिप्ससे पौन घंटेकी बातचीतमें उन्होंने इस कामको किया। क्रिप्सका मिशन विफल हो जानेके बाद 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ा गया। ९ अगस्त १९४२ ई० को जब बम्बईमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक समाप्त होनेके बाद सभी नेता पकड़े गये, तो डा० पट्टाभि भी उनके साथ थे। अन्य नेताओंके साथ डा० पट्टाभि भी अहमदनगर जिलेमें नजरबंद किये गये। इसके पूर्व जब जुलाईमें वर्किङ्ग कमेटीकी बैठक वर्धामें हुई थी, उसकी बैठक १४ जुलाईको समाप्त हो जानेपर महात्माजीने डा० पट्टाभिको रोक लिया था। वहां १५ जुलाईको गांधीजीके साथ उनकी जो बातचीत हुई थी, वही उनका स्वर बन गया जो सुप्रसिद्ध आंध्र सर्कुलरका आधार बना, जिस की चर्चा आगे की जा रही है। वर्किङ्ग कमेटीके बारह मेम्बरोंके अहमदनगर किलेमें बंद किये जानेके बीस दिन बाद मद्रास सरकारकी ओरसे एक कम्यूनिक प्रकाशित हुआ। उसमें कांग्रेसकी ओरसे भारी षड्यंत्र रचे जानेका पता चलनेकी बात कही गयी थी और आंध्र सर्कुलरका उल्लेख था। सरकारी कम्यूनिकमें कई ऐसी बातें जोड़ दी गयी थीं, जो आंध्र सर्कुलरमें नहीं थीं यद्यपि पीछे सितम्बर (१९४५) में भारतमंत्रीने पार्लमेंटमें उस भूलका सुधार कर दिया, तो भी भारत सरकारके होम मेम्बर सर मुहम्मद उसमानने स्टेट कौंसिलमें उस सर्कुलरके विषयमें वह गलत बात ही फिर दुहरायी थी। अहमदनगर किलेमें स्वभावतः वह सर्कुलर बड़ी बातचीतका विषय बन गया था और पीछे वर्किङ्ग कमेटीके छोड़ जानेके बाद शिमलामें भी १९४५ के जूनमें उसकी खासी चर्चा रही। कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे मौलाना आजादने जब गांधीजी द्वारा स्पष्टीकरणके उद्देश्यसे बात उठायी, तो डा० पट्टाभिसे कहा गया था कि वे उस सम्बन्धमें अपनी बात सुनायें। उन्होंने जो विवरण दिया, उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

आन्ध्र सर्कुलर

१५ जुलाईको वर्धामें जो कुछ हुआ, वह यह था कि मित्रोंकी छोटी-सी गोष्ठीमें प्रत्येक प्रान्तके सम्बन्धमें पूछा था कि वहां किस प्रकार आन्दोलन चलाया जायगा। तीन-चार विषयोंके सम्बन्धमें कितने ही प्रश्न किये गये थे, वे ये थे—(१) म्युनिसिपल टैक्स और जमींदारी लगानका चुकाना बंद रखना (२) तार काटना (३) ताड़ी वाले ताड़के पेड़ोंको काट कर गिराना (४) सैनिक क्षेत्रोंमें पिकेटिंग करना। गांधीजी ताड़ोंके काटनेके कामको अहिंसात्मक होनेकी संभावना पर बोले थे। उन्होंने कहा था कि ये प्रश्न पीछे विचारार्थ लिये जा सकते हैं और डा० पट्टाभिने, जो शब्द-प्रति-शब्द लिख रहे थे, प्रत्येकको उसी क्रमसे रखा, जिस क्रमसे उसकी चर्चा की गई थी। जैसे ही वे लौट कर मसलीपट्टम पहुंचे, उन्होंने प्रादेशिक कांग्रेस कमेटीके सेक्रेटरीको सभी जिलोंसे दो-दो प्रतिनिधि बुलानेको कहा। वे प्रतिनिधि २८ जुलाई (१९४२) को उनके मकान पर खुले तौर पर उन विषयों पर विचार करनेके लिये एकत्र हुए। यह विचार आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षके सभापतित्वमें हुआ। इस तरह जो विधि वहां निर्धारित हुई, वह खुले तौर पर आन्ध्र प्रांतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा सुझाये गये आन्दोलनके कार्यक्रमके रूपमें जिलोंमें जेनरल सेक्रेटरीके हस्ताक्षरसे वितरित की गयी। उस सर्कुलरकी एक प्रति ३० जुलाईको रजिस्टरी चिट्ठी द्वारा गांधीजीके पास भी भेजी गयी। सर्कुलरमें साफ शब्दोंमें चेतावनी दे दी गयी थी कि इस आन्दोलनके द्वारा किसी जन-साधारणको खतरा नहीं होना चाहिये और रेलकी पटरी हटानेके सम्बन्धमें यह चेतावनी दी गई थी कि इस चीजके लिये कोई सिफारिश नहीं की जाय, यद्यपि यह रोकी नहीं गयी है, किसी भी अवस्थामें कहा यह गया था कि छिपा कर कोई बात नहीं की जानी

चाहिये और प्रत्येक कार्य प्रकाश्य रूपमें होना चाहिये। ऐसे 'दोषरहित' सर्कुलरका जिस तरह अर्थ बिगाड़ा गया था, उस पर ही मद्रास सरकार और सर उसमान आग्रहशील बने रहे। यरवदा जेलसे महात्मा गांधीने भारत सरकारके साथ जो पत्र-व्यवहार किया था, उसमें उन्होंने भी इस सर्कुलरको 'दोषशून्य' बताया था। पीछे जब कांग्रेसी उपद्रवोंके सम्बन्धमें सरकारकी ओरसे एक पुस्तिका प्रकाशित हुई, तो देखा गया कि उसमें यह कहा गया है कि रेलकी पटरियोंको हटानेकी बात पीछे निकाले गये दूसरे सर्कुलरमें थी। सचाईका यह कैसा सुन्दर नमूना है! यह सारा वृत्तान्त डा० पट्टाभिने बेजवाडाकी सार्वजनिक सभामें सुनाया था और उसका सारा दायित्व अपने ऊपर लिया था। इससे जिस प्रकार भारी सनसनी पैदा हुई, वैसे ही उनके साहस और स्पष्टवादिताकी सराहना भी सभी लोग करने लगे।

पीछे महात्माजीने अपने एक वक्तव्यमें यह कहा था कि निस्सन्देह आश्रममें १५ जुलाईको कुछ इस विषयमें चर्चा चली थी, लेकिन वह न तो लिखी गयी थी और न बाहर उसे फैलाने का उद्देश्य ही था। बेजबाडामें डा० पट्टाभिने जैसी निर्भीकतासे सारी बातें कही थीं, उसके कारण कई किम्बदन्तियाँ जरूर फैली थीं। प्रादेशिक निर्वाचनों का समय पास आ रहा था, उस समय डाक्टरजी बेलोर जेलमें थे (मई-जून १९४५) उनके मित्रोंने उन्हें मद्रासके प्रधान मन्त्री पदके लिये खड़े होनेको आग्रह किया, किन्तु डाक्टरजीका साफ उत्तर था—मैं तो पदकी परवाह करता नहीं, किन्तु यदि गांधीजी चाहें और पार्टी सर्वसम्मतिसे कहे तो कौंसिल-प्रवेशके विरुद्ध अपने विचारको शिथिल कर सकता हूं। गांधीजीकी राय नहीं हुई, इसलिये डा० पट्टाभि कौंसिलसे दूर ही रहे।

विधान-परिषदके लिये वर्किङ्ग कमेटीकी इच्छाके अनुसार डा०पट्टाभि भी मद्रासससे मेम्बर चुने गये। और उसकी कार्रवाइयोंमें अपनी स्वाभाविक योग्यता, सुदीर्घ अनुभव और विशाल ज्ञानके साथ भाग ले

रहे हैं और इस प्रकार देशकी इस पार्लमेंटमें उन्हें अबतक कौंसिलोंसे सदा दूर रहनेकी नीतिके कारण तनिक भी कठिनाईकी असुविधा अनुभव नहीं हो रही है ।

जेलकी चिड़िया

जैसा कि पहलेके पृष्ठोंमें पाठक पढ़ चुके हैं, डा० पट्टाभिको अपनी देश-सेवाओंके लिये बारम्बार जेल-यात्रा करनी पड़ी है । सच पूछिये तो पराधीन भारतके भीतर विदेशी अंग्रेज शासकोंके यहाँ सभी देश-सेवाओं के लिये किसी देशभक्तको पकड़ कर जेल भेज देना ही एक पुरस्कार था । इसे हम सर्वोत्तम पुरस्कार तो इसलिये नहीं कह सकते कि महात्मा गांधीने जब उसके इस अस्त्रको प्रभावरहित एवं व्यर्थ बना डालनेके लिये जेलखानोंको भर देनेकी आवश्यकता प्रकट की और उनके इंगित करने पर एकसे अधिक बार देश भरके सभी जेलखाने एकदम ठसा-ठस भर दिये, तब निरंकुश नौकरशाहीने हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलनको निर्दयतापूर्वक कुचल डालनेके लिये एक-से-एक भयंकर अस्त्र गढ़ लिये थे, जिनका अंधाधुन्ध प्रयोग मानव-जीवन और प्रतिष्ठाका कुछ भी ध्यान किये बिना किया गया था । महात्मा गांधीने अपने महान् आन्दोलनको जैसे जनव्यापी बनानेका आयोजन किया था, वैसे ही उसे अन्त तक पूर्णरूपेण अहिंसात्मक बनाये रखनेका ध्यान खास तौरपर रखा था । इस प्रकार जब उनके नेतृत्वमें लाखोंकी संख्यामें देशभक्त जेलखानोंको हँसते-हँसते भर देते थे और उनके भीतर सभी जेल-यात्रियोंके लिये स्थान नहीं रह जाता था, तब नौकरशाहीका जेलवाला अस्त्र एकदम व्यर्थ और प्रभावहीन हो गया था । जनताके हृदयसे जेलका भय सदाके लिये मिट गया और जब देशभक्तोंकी सेनाने नौकरशाहीके उस 'एटम बम' को प्रभावशून्य बना डालनेमें सफलता प्राप्त कर ली, तब तो अपनी ऐसी महत्वपूर्ण सफलता पर उसे असाधारण प्रसन्नता होनी

स्वाभाविक ही थी। अतः जेलपर विजय पानेके साथ ही भारतमाताके पवित्र चरणोंपर अपना सर्वस्व निछावर कर देनेके लिये तैयार देशभक्त यह तराना छेड़ने लग गये थे—

कौमकी खातिर मेरी दुनियांमें गर तौकीर हो,
हाथमें हो हथकड़ी पाँवोंमें पड़ी जंजीर हो,
सूली मिले फाँसी मिले फिर मौत दामनगीर हो,
मेरी खातिर खास कर दोजख नया तामीर हो,
मंजूर हो, मंजूर हो, मंजूर हो, मंजूर हो।

फिर तो नौकरशाहीने भी मानो इसीके उत्तरमें हमारे देशभक्तोंके लिये नये-नये दोजख (नर्क) बनानेका कार्य आरम्भ करनेमें अधिक देर नहीं की और फलस्वरूप देशभक्तोंकी आकांक्षाकी पूर्त्ति की। अर्थात् मृत्युके उनके पल्ले पड़नेमें कुछ 'मौत दामनगीर' होनेकी भी कसर नहीं रह गयी। ठीक-ठीक यह लेखा लगाना संभव ही नहीं कि महात्मा गांधीके उस देशव्यापी असहयोग आन्दोलनके बीच कितने स्त्री-पुरुष आबालवृद्ध निरंकुश नौकरशाहीकी पुलिसके लाठी-चार्जसे हताहत हुए, कितनोंको सेना और पुलिसकी गोलियाँ खानी पड़ीं, कितनोंको पेटके बल रेंगना पड़ा, कितनोंको घर-द्वार और अपनी सब प्रकारकी सम्पत्तिसे हाथ धोना पड़ा और न जाने कौन-कौन-सी दारुण यन्त्रणाएँ सहनी पड़ीं। थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि भारतके स्वातंत्र्य आन्दोलनको कुचल डालनेके लिये नौकरशाहीने वे सभी राक्षसी उपाय काममें लिये, जिनकी कल्पना मानव मस्तिष्कके लिये असंभव हो सकती थी। आन्दोलनको कुचल डालनेके लिये जैसे-जैसे अधिक भयङ्कर उपाय अधिकारी काममें लाते रहे, वैसे ही महात्माजीकी अहिंसात्मक सेनाके बड़े-बड़े सेनानी ही नहीं, साधारणसे साधारण सैनिक तक उन अधिकारियोंके लिये भयंकर बनते गये। अन्तमें उन आसुरी शक्तियों पर हमारी दैवी शक्तियोंको, हिंसापर अहिंसाको और असत्यपर सत्यकी

जिस प्रकार विजय हुई है, वह प्रत्यक्ष हैं। महात्मा गांधी 'सत्य' को ईश्वर मानते थे और 'सत्यमेव जयते नाऽनृतम्' की उक्तिको चरितार्थ करते थे। इसलिये भारतमें छिड़े हुए उस अद्भुत प्रकारके देवासुर-संग्राममें अहिंसा एवं सत्यवाले पक्षकी विजय तो सुनिश्चित थी ही।

हमारे चरित्रनायकको भी देश-सेवाके अपने उस कठिन व्रतके अनुष्ठानमें जेलकी चिड़िया बनना पड़ा था, अपनी जेल-यात्राओंके विषयमें स्वयं डा० पट्टाभिने इस भांति लिखा है :- प्रथम बारकी मेरी सजा (१९३० ई०) सीधी-सादी थी। वह नमक सत्याग्रह और पिकेटिंगके सम्बन्धमें थी। सजा एक वर्ष की थी। एक महीनेके बाद 'ए' डिवीजन मिल जानेसे जब जेल-जीवन सुगम और अपरिवर्त्तित बन गया था। दूसरी बारकी जेल-यात्रा दफा १४४ भङ्ग करनेके अभियोगमें क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्टके अनुसार हुई, जिसमें दो वर्षकी सजा सुनायी गयी। साथ ही ग्यारह सौ रुपयेका जुर्माना सुनाया गया, वह मनोरंजक था और 'सी' क्लास सुनाकर तो नौकरशाहीने अपनी आत्म-हीनताका स्पष्ट परिचय दे डाला था। 'सी' क्लासका अनुभव नया था और इस क्लासवालेको मिलनेवाली पोशाक और भोजनने मुझे छः दिनके भीतर ही बीमार कर दिया और चलने-फिरनेकी तो बात दूर रही, मैं खड़ा होने या बैठने योग्य भी नहीं रह गया. ऐसी विकट पीड़ा थी। पंचत्वको प्राप्त हो जाने की आशंकाके कारण क्लास बदल दिया गया और फिर बेलोर जेलमें भेज दिया, तब कहीं उस पीड़ासे मुक्ति मिली। अच्छा हो जानेपर मैं अध्ययनमें जुट गया। ग्यारह सौ रुपयेका जुर्माना वसूल करनेके लिये चार मोटर-लारियोंमें भर कर मेरे घरकी चीज-वस्तुएं लायी गयीं--तैयार किया हुआ वह भोजन भी नहीं छोड़ा गया, जो तैयार तो कर लिया गया था, किन्तु उदरस्थ नहीं हो पाया था। छूटनेके छः सप्ताह पश्चात् १९३३ के अक्टूबरमें तीसरी बारी आयी। इस बार मुझे छः महीनेका विश्राम मिला और पांचसौ रुपये देने पड़े। यह पुरस्कार विदेशी वस्त्रोंकी एक दूकान पर

धरना देने (पिकेटिंग) के अपराधमें प्राप्त हुआ। अबकी बार क्लास देनेमें जो शीघ्रता की गयी थी, उससे वेलोर जेलमें जीवन स्वस्थ रहा। परन्तु जब इस यात्रासे लौटा, तब व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाका आन्दोलन उठा लेनेका महात्माजी विचार ही नहीं करते थे, शीघ्र ही (मई १९३४) में वह उठा भी लिया गया। चौथी बार वेलोर जेलको भेजे जानेके लिये मेरी गिरफ्तारी १९ मार्च १९४१ को हुई थी। इस बार अपने प्रधान सेनानायक गांधीजीके आदेशानुसार त्रावंकोरकी उलझन मिटानेके प्रयासमें लगे रहने और स्वेच्छासे जेल चले जानेके विरुद्ध उनकी बारंबार चेतावनी मिलनेके कारण मैं स्वयं बादशाहका मेहमान अभी तक नहीं बन सका था, यद्यपि सत्याग्रह आंदोलन १९४० के अक्टूबरमें ही छेड़ा जा चुका था। परन्तु महात्माजीका वह आदेश तो मेरे लिये था और मैं ही उससे बंधा हुआ भी था, सरकार तो उससे बंधी हुई थी नहीं, इसलिये उसने एक बार फिर मुझे वेलोरवाले कृष्ण-भवनमें टिकाकर मेरा आतिथ्य करनेमें अधिक देर नहीं की। हां, इस बार मैं उसका एक नजरबंद मेहमान था।

अहमदनगरके किलेमें

डा० पट्टाभिकी अन्तिम जेल-यात्रा वह थी, जो उन्हें वर्किङ्ग कमेटीके अन्य सदस्योंके साथ ९ अगस्त १९४२ को 'भारत छोड़ो' नामसे प्रसिद्ध उस आन्दोलनके सम्बन्धमें करनी पड़ी थी, जो नियमित रूपसे छेड़ा भी नहीं गया था और जिसे छेड़नेके लिये कांग्रेसकी अखिल भारतीय कमेटीने प्रधान सेनानायकको सर्वाधिकार सौंप तो दिया, किन्तु वह प्रधान सेनानायक तब तक उसे छेड़नेकी इच्छा नहीं रखता था, जब तक वायसरायसे मिलकर बातचीत कर लेने तथा अन्य शान्तिपूर्ण उपायोंसे समझौता करनेका पूरा-पूरा प्रयत्न न कर लिया जाये। इस बार उन्हें अपने अन्य ग्यारह साथियोंके साथ बत्तीस महीनेके लम्बे समय तक

अहमदनगरके किलेमें बंद रहना पड़ा था और अपने उस जेल-जीवनकी डायरीमें डा० पट्टाभिने लिखा है :—अहमदनगर किलेके उनके तथा उनके साथियोंके जीवनका परिचय प्राप्त करनेके लिये यह वृत्तान्त बड़े कामका है। अहमदनगरका ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णन देनेसे अरंभ कर वहांके अपने निवासकाल तककी सभी मुख्य-मुख्य बातोंका समावेश डाक्टर साहबने बहुत ही सुन्दर ढंगसे किया है। इसके आदि और अन्तके कुछ अंश देनेका लोभ संवरण करना हमारे लिये कठिन हो गया है :—

अहमदनगर दक्षिण भारतका बहुत ही प्राचीन नगर है। प्राचीन कालमें बहमनी राज्यकी राजधानी गुलबर्गासे हटाकर यहीं लायी गयी थी। पीछे कितने ही राजघराने आते और जाते रहे। विजयनगरके सुप्रसिद्ध रामराजाके पश्चात् (१४९०-१६३६) निजामशाही और उसके बाद (१६३६ से १७५९ तक) मुगलोंके शासनके पश्चात् मरहठोंका आधिपत्य हुआ। उनका राज्य १७५९ से १८१७ तक बना रहा, जिसके बाद १८१७ से आगे अंग्रेजी राज्य आया। महाराज शिवाजीके पुत्र संभाजीको १६९० ई० में फांसी दी गयी, जिसके बाद उनके लड़के साहूको, जो उस समय छः वर्षका बालक था, औरंगजेब दिल्लीसे ले गया। वहां उसका लालन-पालन हुआ और प्रायः सारा जीवन व्यतीत हुआ। औरंगजेबकी मृत्यु नवासी वर्षकी अवस्थामें १७०७ ई० में इसी अहमदनगरमें हुई थी। परन्तु साहूजी औरंगजेबकी मृत्युके पहले ही बंधन-मुक्त कर दिये गये थे और उन्हें शिवाजीकी सुप्रसिद्ध 'भवानी' तलवार ही नहीं, बीजापुरके जेनरल अफजलखांकी तलवार भी भेंट दी गयी थी तथा दहेजमें नेवासाका जिला भी उन्हें दिया गया था। १७१९ ई० में मुगल सेनाका कत्ल होनेके बाद बहुत समय तक संधि-वार्त्ता चलनेके पश्चात् पेशवा बालाजी विश्वनाथकी प्रबन्ध—चातुरीके फलस्वरूप मरहठोंको चौथके साथ-साथ दक्षिणके जिन छः प्रान्तोंकी सर-देशमुखी मिली थी, उनमें एक अहमदनगर भी था। १७४८ ई० में

तत्कालीन निजामकी मृत्यु हो जाने पर, जिनकी अधीनतामें अहमदनगर था, बड़े उपद्रव खड़े हो गये थे। उन उपद्रवोंसे पेशवाको अवसर मिला और उन्होंने निजामके उत्तराधिकारी सलावत जंगपर आक्रमण कर दिया। अन्तमें निजामकी सेना १७५२ ई० में जब करीब-करीब पराजित कर दी गयी थी, सलावत जंगने युद्ध बंद करनेकी संधि कर ली, जिससे मरहठोंको नासिक और खान देशके सिवा अहमदनगरके गांगथाडी पर अधिकार प्राप्त हो गया। १७५६ ई० में अहमदनगरका किला पेशवाके हाथ लग गया। उसके बादके इतिहासमें जानेकी कोई आवश्यकता यहां नहीं मालूम होती। केवल इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि ५ नवम्बर १६१७ को किरकी की लड़ाईमें अहमदनगर पर्वतके दक्षिणके इलाकोंको वे समर्पण कर चुके थे। अन्तमें १८२१ ई० मे अंग्रेजोंके हाथ पड़ा। इस तरह मरहठोंके हाथसे देशके इस भागका अधिकार पा लेनेके समय से ही (१८२७) अंग्रेजोंका अधिकार रहा है। उसी अहमदनगरके किलेके भीतर डा० पट्टाभिका, देशके महान् नेता पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल तथा अन्य कार्य्य समितिके सदस्योंके साथ ६ अगस्त १६४२ को प्रवेश हुआ। यह किला पत्थरको बनी हुई एक मील और अस्सी गज लम्बी गोलाकार दिवारसे घिरा हुआ है। अहमदनगरका यह प्रसिद्ध किला पहले-पहल हुसेन निजामशाहने (१५५३ से १५६५ तक) में बनवाया था। लेकिन पहले यह कच्ची मिट्टीका ही बना था। पीछे वह फिरसे पत्थरसे बनवाया गया। १७६७ ई० में यह किला सिंधियाको समर्पित किया गया था और पीछे १८०३ ई० में यह किला जेनरल वेलेसलीको समर्पित हुआ, जो पीछे ड्यूक आव वेलिगंटनके नामसे प्रसिद्ध हुए थे। किलेके साथ सिंधियाका एक राजमहल है, जो बिजली तथा सुख-साजकी सारी सामग्रियोंसे सुसज्जित है। १८०३ ई० में किला पेशवाको दे दिया गया था और अन्तमें १८१७ में यह पुनः अंग्रेजोंको सौंपा गया था और तबसे उन्हींका इसपर अधिकार रहा है।

सच्चा रतन-पारखी

हमारे चरित्रनायक कितने बड़े रतन-पारखी हैं, यह उनकी पुस्तक "फेदर एन्ड स्टोन" के कुछ अन्तिम पृष्ठोंसे स्पष्ट प्रकट होता है। इन पृष्ठोंमें उन्होंने अहमदनगर किलेमें रहनेवाले अपने अन्य साथियोंके विषयमें अपना मत थोड़े, किन्तु सारगर्भित शब्दोंमें अंकित किया है। यह सच है कि 'सहवासी विजानीयात् चरित्रं सहवासिनाम' अर्थात् किसीके चरित्रकी ठीक-ठीक जानकारी उसके साथ वास करनेवालेको ही होती है। परन्तु जहां रत्नकी परीक्षा करनी है, वहां तो सच्चा रतन-पारखी ही सफल होता है, साधारण बिसातीकी वहाँ सामर्थ्य ही क्या? डा० पट्टाभिके साथ कांग्रेसके अन्य जो नेता उस किलेमें रखे गये थे, वे सभी भारतके उच्च कोटिके रत्न हैं, यह तो उनके नाम सामने आते ही सब लोग मान लेंगे। स्वयं डा० पट्टाभिसे ही सुनिये—"हमने लगभग एक सहस्र दिवस दिनके घंटों, सप्ताहके दिनों, महीनेके सप्ताहों और वर्षके महीनोंको गिनते हुए काटे हैं। इन दिनोंमें हजारों पृष्ठ लिखे गये और दसों हजार पृष्ठ पढ़े गये हैं। पन्द्रह सदस्यों की (यहाँ केवल) एक छोटी ठोस कमेटीने हम लोगोंको जो वर्षोंसे महीने-महीनेमें एकत्र हुआ करते थे, बहुत ही कम इसकी आशा की थी कि हम सब एक ही मकानमें रहकर एक साथ बैठकर खाने, गपशप करने, खेलने, हंसी मजाक करने और शायद ही कभी झगड़ोंमें समय व्यतीत करेंगे। परिचित तो हमलोग एक दूसरेसे बहुत वर्षोंसे रहे हैं, पर एक दूसरेके विषयमें हम लोगोंको बहुत ही कम जानकारी थी, एक दूसरेके परिवारोंकी तो और भी कम और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति—देना-पावनाकी तो सबसे कम। हमलोग विभिन्न प्रान्तोंके थे और हममें वृद्ध, अधेड़ और युवक सभी थे, जिनकी अवस्था बयालीससे अड़सठ वर्षके बीच थी। अविवाहित और विवाहित भी, ऐसे भी

जिनके कोई बच्चा नहीं या और कई बच्चेवाले भी—कई ऐसे भी जिनकी पत्नीका देहांत हो चुका था और विधुर बने रहे। हमें इसका ध्यान तो कभी एक बार भी नहीं हुआ कि अमुक मुसलमान है और अमुक हिन्दू है और न इसोका कि अमुक एक ब्राह्मण है, अमुक एक कायस्थ है और अमुक एक खत्री। इस बस्तीके अपने पदके विचारसे प्रथम नागरिक मौलाना हैं। बल्लभ भाई सबसे बड़े बुद्धिमान हैं, जवाहरलाल सबसे अधिक कर्मशील, डा० सैयद महमूद सबसे अधिक शांत, आसफ अली सबसे अधिक विचारशील, पं० पन्त सबसे अधिक पैनी बुद्धिवाले, डा० घोष सबसे अधिक वैज्ञानिक तथा सबसे अधिक काममें आने वाले, कृपलानी सबसे अधिक व्यवसायी, नरेन्द्र देव सबसे अधिक पंडित और महताब सबसे अधिक कलाकार हैं। और मैं! मैं सदा ही भोजनके समय मौन रहता हूं। इसके बहुतसे कारण हैं। एक तो यह कि चबा-चबाकर खाते समय बातें करना मैं नापसंद करता हूँ। फिर मैं ठहरा भात-भोजी और भात गरम-गरम ही खाना ठीक होता है। पीछे तो रोटी भी खाने लगा हूं। हिन्दू रिवाज भी भोजनके समय मौन रहने को कहता है। यही स्वास्थ्यकर भो है।

डायरीके कुछ पन्ने

जैसा कि ऊपर कह आये हैं, डा० पट्टाभि अहमदनगर किलेमें एक डायरी लिखते जाते थे, जिसमें उस छोटेसे संसारके भीतर जो बात महत्वकी जान पड़ती, उसे वे नोट कर लिया करते थे। वह डायरी एक खासी बड़ी पोथी बन गयी है, इसलिये स्थानकी कमीके कारण हम उसके महत्वकी कुछ चुनी हुई चीजें यहाँ देनेका प्रयत्न करेंगे—

महात्माजीके लिये चिन्ता

जब हम लोग अहमदनगरके किलेमें ठीक-ठीकानेसे रहने लग गये, तब हमें यह चिन्ता होने लगी कि गांधीजी क्या कर रहे हैं? वे कितनी

ही बार कह और लिख चुके थे कि जेलमें बन्द किये जानेपर वे भोजन हाथसे छुयेंगे भी नहीं। जब हम लोग रेलगाड़ीमें थे, कुछ मित्रोंने इस विषयमें बातचीत की थी। इसके सिवा जब बम्बइमें बिरला हाउसमें उनकी गिरफ्तारी होनेको ही थी, गांधीजीकी गिरफ्तारीके बाद एक पखवारेके लिये नरम पड़नेके लिये राजी हो गये मालूम पड़ते थे। पखवारा शीघ्र ही समाप्त हो रहा है। वे क्या कर रहे हैं और उन्होंने कौन-कौनसे निश्चय किये हैं, इस विषयका कुछ समाचार हमें नहीं मिला था। क्या उन्होंने अनशन प्रारम्भ कर दिया है? यदि हाँ तो क्या हम यहाँ उससे अप्रभावित ही बने रहें? निश्चय हुआ कि हमें प्रतीक्षा करनी चाहिये।

× × × ×

महादेव देसाईका देहावसान

इसी बीच २७ अगस्त (१९४२) को समाचार-पत्र आये और 'टाइम्स आव इण्डिया' के एक छोटेसे सम्पादकीय लेखमें 'नाजी प्रचार और श्री देसाई' शीर्षकके नीचे महादेवकी मृत्युकी चर्चा प्रसंगवश की गई थी। यह समझ लेनेमें कुछ देर लगी कि वे १५ अगस्तको जब पुलिसके इन्सपेक्टर जेनरलसे बातचीत कर रहे थे, तभी अचानक उनका प्राणान्त हो गया। जान पड़ता है कि मृगी रोगका दूसरी बार दौरा हुआ था। क्योंकि मुझे याद है कि कोई दो वर्ष पूर्व एक बार जब उसका दौरा हुआ था, तब पूर्ण रूपसे विश्राम करनेके लिये उन्हें एक स्वास्थ्यकर स्थानको भेजना पड़ा था। तब यह प्रश्न था कि उनका इस तरह तुरन्त और अकस्मात् देहान्त हो जानेके पश्चात् उनकी लाशका क्या हुआ? क्या वह उनकी पत्नी और पुत्रको दे दी गई, जिनका पता सरलतासे मालूम किया जा सकता था। या उस स्थलपर ही उसकी गति कर डाली गई? २ सितम्बरको यह लिखते समय हम केवल आनुमानिक समाचारपर ही भरोसा कर सकते थे और इस रिपोर्टको

सच मानने या न माननेका काम भी हम पर ही था कि यरवदा संट्रल जेलसे चार साधारण कैदी प्राप्त किये गये और महादेवकी लाश आगा खां महलके अहातेके भीतर जलायी गई। क्या यह सच रिपोर्ट थी? यदि हां, तो क्या ऐसा गांधीजीकी रजामंदीसे किया गया या उनके मूक अथवा प्रकट प्रतिवादके होते हुए भी? फिर यह भी प्रश्न था कि महादेवकी मृत्युके पश्चात् गांधीजीके साथ और कौन रह रहा है? हमने समझ लिया था कि सरोजिनी नायडू गांधीजीके साथ नहीं हैं और वे यरवदा संट्रल जेलमें हैं। बहुत सम्भावना श्रीमती गांधीके उनके साथ होनेकी है और गवर्नमेंटकी रिपोर्टसे यह मालूम होता है कि डा० सुशीला नायर उनके साथ हैं। वे महात्माजीके प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलालजीकी बहिन हैं।

× × ×

अज्ञातवास

हम कहां रखे गये हैं, यह छिपा रखनेका प्रयत्न किया जाता है। मि० एमरीने पार्लमेंटमें यह प्रकट करनेसे इन्कार किया कि जवाहरलाल और अन्य लोग कहां रखे गये हैं। लेकिन साफ है कि भारतमें सभी को मालूम है। वस्तुतः जहां तक गांधीजीका सम्बन्ध है, १० अगस्त १९४२ के 'बाम्बे क्रानिकल' में छापा गया था कि वे पूनामें आगा खाँ के महलमें हैं। हाँ, हम लोगोंको ये पत्र एक महीने बाद मिले थे। लेकिन एक मित्रकी बहिनने अपने भाईको, जो यहाँ हैं, लिखा था कि "आप कहाँ हैं, यह हम सब कोई जानते हैं, यद्यपि हमें बतानेकी इजाजत नहीं है। हमें यह भी सूचित किया गया था कि एक भारतीय (प्रांतीय भाषाके) दैनिकमें पते छापे गये थे। एक चचेरी बहिनने यहाँके अपने चचेरे भाईको यरवदा जेलसे जो पत्र लिखा था, उसपर पता 'भिंगर कैंप अहमदनगर' लिखा था। छावनी और किला भिंगर नामसे जाहिर है। पत्र पर अहमदनगरके डाकखानेकी मुहर (२३ सितम्बर) की थी।

दूसरी मुहर थी यरवदा की। स्पष्ट है कि वह लिफाफा अवश्य ही बम्बई सरकारके पास लौटाया गया होगा और कहीं लगभग तीन सप्ताह तक रुके रहनेके बाद १३ अक्टूबरको वापस आया था। इससे स्पष्ट है कि जब २१ और २२ सितम्बरको यरवदा जेलमें पत्रको पास किया था, तब उन लोगोंको यह पता नहीं था कि भिगर कहां है और पत्र किसके पास जा रहा है और वह कौन है। नौकरशाहीका काम इसी तरह हुआ करता है। (६—१०—४२)।

× × ×

जमीनके नीचे सुरंग

बगीचेके लिये छोटा-सा भी गढ़ा खोदनेसे यहांके लोग घबड़ा उठते हैं। उनका भय निराधार नहीं है। हमें मालूम हुआ है कि फौजको सदा बराबर यह संदेह रहता है कि हम लोग भाग जा सकते हैं। उनका ऐसा विचार बदलना सम्भव नहीं है—चाहे हम उन्हें यह विश्वास भी करा सकें कि हम लोग दूसरे प्रकारके आदमी हैं। वे बराबर यही सोचते हैं कि यदि आप बगीचेके लिये जमीन खोदते हैं, तो आप जमीनके नीचे सुरङ्ग बना रहे हैं। ये विचार काल्पनिक ही नहीं हैं, बल्कि वास्तविक बातचीतके आधार पर हैं। मुल्की अधिकारियोंने हमें फौजको सौंप दिया है। हम लोग शायद न यहाँ हैं और न वहाँ, लेकिन फिर भी ऐसी बात नहीं है कि न हम यहां हैं, न वहाँ, हम दोनों ही में हैं और यही मुश्किल है।

× × ×

गाजी मियां

अचानक एक संध्याको एक मित्र (जवाहरलाल) जरा जोरसे 'गाजी मियां वाहीपार, वाहीपार' बोल पड़े। तब उन्होंने किस्सा सुनाया। गाजी मियां एक फकीर थे। प्रतिवर्ष जनसाधारण मुसलमान उनका

वर्ष दिन मनाते हैं और उसमें हिन्दू भी ढोल और बाजा लेकर शामिल होते हैं। कहा जाता है कि गाजी मियां एक दिन हवा खानेके लिये चले। उनके साथ उनके दो चेले भी थे—नबी मियां और अल्लाह मियां, रास्तेमें एक छोटा-सा नाला पड़ा और सवाल यह था कि किस तरह इसे पार किया जाये। गाजी मियांने कहा कि हम लोगोंको इसे फांद जाना चाहिये। अल्लाह मियां कुछ पीछे हटे और आगे दौड़कर उन्होंने छलांग भरी, तो बीच धारामें गिरकर 'गुड़क' हो गये। नबी उम्रमें छोटा था। उसने कुछ अधिक दूर दौड़कर छलांग भरी थी, लेकिन वह भी 'गुड़क' हो गया (डूब गया)। तब बचे गाजी मियाँ, जो खूब हृष्ट-पुष्ट थे। उन्होंने अपने कपड़ोंको ठीकसे कसकर बांधा और लम्बी छलांग भरी, तो नालेके ठीक उस किनारे पर पहुंच गये। उसीकी यादमें लोग 'गाजी मियां वाहीपार-वाहीपार' चिल्लाते हैं। ढोल बजा-बजाकर जब कोई प्रयत्न सफल होता है, तब भी यही बात कही जाती है।

× × ×

नाईवाली अंग्रेजी

एक कहानी कही गयी है। एक जमींदार थे और उनका एक नाई था। जमींदार साहब अंग्रेजी नहीं जानते थे, लेकिन नाईको अंग्रेजीमें तीन बात कहनी आती थी—'यस सर' (हां साहब), 'नो सर' (नहीं साहब), और 'वेरी वेल सर' (बहुत अच्छा साहब) एक दिन एक सिविलियन अंग्रेज उस स्थान पर संयोगवश पहुंच गया और घोड़ेको खूंटेसे बाँध खीमा लगाने लगा। लेकिन घोड़ा निकल भागा। सिविलियन जमींदारके पास पहुंचा और अंग्रेजीमें बोलने लगा। जमींदार साहबको तो अंग्रेजी आती नहीं थी, इसलिये उन्होंने अपने नाईको बुला भेजा। सिविलियनने नाईसे पूछा—'क्या तुम जानते हो कि मेरा घोड़ा कहां है?' वह बोला—'यस सर'। 'क्या तुम मुझे

बताओगे कि घोड़ा कहाँ है ?'—नाई—'नो सर'। अब मैं तुम्हें चाबुक लगाऊँगा।' नाई—'वेरी वेल सर'।

इससे मुझे एक कहानी याद आ गयी, जो मेरे मित्र ए० कालेश्वर-रावने सुनायी थी, यद्यपि मैंने अपने मित्रोंको उस समय इसे नहीं सुनाया था। वह यह है—महान् फ्रेडरिककी सेनामें संयोगसे तीन अंग्रेजी न जानने वाले सैनिक थे। अफसर लोग जांच करते समय तीनसे ये प्रश्न पूछा करते थे—'ह्वाट इज़ योर एज'? (तुम्हारी उम्र क्या है) 'ह्वाट इज़ योर सर्विस ?' (तुम कबसे नौकर हो) और 'डू यू गेट योर फूड एण्ड क्लोथिंग रेगुलरली' ? (तुम्हें अपना खाना और कपड़ा ठीक से मिलता है कि नहीं) सैनिकोंको ठीक इस प्रकारसे जवाब देना सिखाया गया था—'ह्वाट इज योर एज ?'—'आई ऐम थर्टी' (मैं तीस वर्षका हूँ) 'ह्वाट इज योर सर्विस ?'—'थ्री इयर्स' (तीन वर्षकी) 'डू यू गेट योर फूड एण्ड क्लोथिंग रेगुलरली ?'—'यस बोथ रेगुलरली' (हां, दोनों ही ठीकसे)। एक दिन महान फ्रेडरिक निरीक्षणको गये और उन्होंने उन सैनिकोंसे प्रश्न तो वे ही किये, किन्तु प्रथम दो प्रश्नोंका क्रम उलट कर। यानी पहले यह पूछा—'ह्वाट इज योर सर्विस ?'—'थर्टी इयर्स' (तीस वर्ष) 'ह्वाट इज योर एज ?'—'थ्री इयर्स' (तीन वर्ष) इसपर उन्होंने यह पूछा 'आर यू ए फूल आर ऐम आई ए फूल ?' (तुम मूर्ख हो या मैं मूर्ख हूं) इसके जवाबमें उन सैनिकोंने बाकी बचा हुआ तीसरा जवाब दिया—'बोथ रेगुलरली' (दोनों ही ठीकसे)

× × ×

पंडित मोतीलालजीका बिस्तर

पं० मोतीलालजी नेहरू ऐसे आदमी थे, जो बनाये ही बड़े गये थे। कद बड़ा, मूँछें बड़ी, बुद्धि बड़ी, हृदय बड़ा, ज्ञान बड़ा, दृष्टिकोण और आदर्श बड़ा, धन बड़ा और रहन-सहन तथा दर्जा बड़ा। गवर्नर लोग यह सब जानते थे। दुर्भाग्यवश एक बार इलाहाबादका कमिश्नर और

पं० मोतीलालजी संयोगवश एक ही डिब्बेमें सवार हो यात्रा कर रहे थे। रात्रिका समय था। पं० मोतीलालजीने अपना बिस्तर फैलवा लिया और उसपर आरामसे पड़ रहे। लेकिन कमिश्नरने न तो अपना बिस्तर लगवाया और न लेटे ही। यद्यपि शायद वे दोनों ही एक दूसरेको चेहरेसे पहिचानते थे, तो भी उनमें एक बात भो नहीं हुई। कुछ दिनों पीछे कमिश्नरने एक तीसरे आदमीसे सारी घटना सुनायी थी और बताया था कि मोतीलालजीका ठाट-बाटवाला बिस्तर देखनेके बाद उसका अपना बिस्तर खोलनेका दिल ही नहीं हुआ, क्योंकि मोतीलालजीके बिस्तरके सामने उसका बिस्तर तुच्छ जँचता था, इसलिये वह अपना बिस्तर खोले बिना अपने बंधे हुए बिस्तरसे उठंग कर बैठा ही रह गया।

× × × ×

दिनचर्या

हम लोग सवेरे साढ़े पाँच और साढ़े छः बजेके बीच सोकर उठते हैं, तीन मित्र रातके तीन बजे और सवेरे छः बजेके बीच चाय पी लेते हैं। दो-तीन प्रातः टहला करते हैं। दो कुछ दिन चढ़े टहलते हैं। सवा सात बजे 'छोटा हाजरी' का घंटा बजता है। कुछ लोग दलिया, केला और दूध या दही लेते हैं। कुछ रोटी और चाय या काफी। ११ बजे कलेवेकी घंटी बजती है और तब तक तीन तो चर्खा कातते हैं (कुछ लोग तीसरे पहर कताई करते हैं)। एक बागवानी करता है, सभी लोग लिखते-पढ़ते हैं और ६॥ तथा १०॥ बजेके बीच प्रत्येकका स्नान हो जाता है। जवाहरलाल सात बजकर पाँच मिनटपर नहाते हैं। मौलाना १०॥ बजे। कलेवाके लिये जाना और आठ मिनट बाद लौटना शंकरराव देवके नहाने जानेका समय बताता है। शंकररावका लौटना प्रकट करता है कि सरदारका खानेके लिये ग्लूकोज या गुड़के साथ तैयार हो,

खानेका वक्त हो गया। कलेवामें साधारणतः ये चीजें होती हैं—चपाती, भात, शाक, रोटी, मक्खन, दही या दूध, मुरब्बा या पनीर। मांस खानेवालोंके लिये मांसादि पानेके दिन निश्चित हैं। चार बजे शामको थोड़ी रोटी और फल तथा चाय मिलती है। आठ बजे रातको भोजनकी घंटी बजती, जो बहुत कुछ जलपान—जैसा ही होता है। कई अपना भोजन अपने कमरे ही में मंगा लिया करते हैं, कुछ तो इसलिये कि टेबुलपर सजायी हुई तरह-तरहकी चीजोंके प्रलोभनसे बचना चाहते हैं और कुछ इसलिये कि उनका भोजनका समय दूसरा होता है। शामको बागवानी, टहलना आदि होता है। भोजनके पश्चात् काफी पी जाती है, जिसमें चार या पाँच आदमी शामिल होते हैं। बाकी लोग गप-शपमें लगे रहते हैं। कुछ दिनोंसे गप-शपकी जगह हममेंसे कई संस्कृत महा-भारतका पारायण करने लगे हैं, ९॥ बजे काफी पीकर लोग खाली होते हैं और चारमेंसे तीन 'लुवेलुवाब क्लब' में सम्मिलित हो गप-शपमें लगते हैं। समाचार पत्रोंको प्रत्येक पढ़ सके, इसलिये व्यवस्थित क्रम बना हुआ है। एक समय हम टेबुलके पास पहुंच नयी और पुरानी फाइलें ठीक करते हैं। तीन दैनिक पूरे बारह महीने तक रखे जाते हैं और एक, एक वर्षके बाद तक भी रखा जा रहा है। प्रत्येक अपनी रुचिके अनुसार पढ़नेके लिये किताबें पसन्द करता है।

× × × ×

विधवा-विवाह

लोग जो ऐसा प्रमाण वचन उपस्थित करते हैं कि जिसके अनुसार एक विवाहिता स्त्री कतिपय अवस्थाओंमें अपना पुनर्विवाह कर सकती है, वह केवल शास्त्रका अवशिष्ट चिन्ह ही नहीं है। पुनर्विवाहके सम्बन्धमें कौटिल्यने विस्तार पूर्वक विचार किया है। ईसाके तीन सौ वर्ष पूर्व पुनर्विवाहकी प्रथा व्यापक रूपमें प्रचलित थी। द्वितीय विवाहके सम्बन्ध

में स्त्री धन और पतिकी जायदादपर स्त्रीके अधिकारोंका उल्लेख कौटिल्य ने ब्योरेवार दिया है। इस राष्ट्रके इस अन्यायको मिटानेके लिये प्रचंड आन्दोलन खड़ा करना चाहिये, जो भारी आर्थिक विपदका कारण सिद्ध हुआ है। यदि मुसलमानोंकी जनसंख्यामें चौरासी प्रतिशतकी वृद्धि हुई है, जब कि हिन्दुओंकी जनसंख्या केवल पैंतीस प्रतिशत ही बढ़ी है, तो इसका कारण केवल मत-परिवर्त्तन और मुसलमानोंमें प्रचलित एक ही समयमें बहु-विवाहकी प्रथामें ही नहीं, बल्कि विधवाको एक ऐसे जीवनमें झोंकना समझना चाहिये, जहाँ उससे अकेली रहकर पवित्रता का जीवन वितानेको कहा जाता है, जिसके योग्य न तो वह है और न हिन्दू समाज ही।

× × × ×

कौटिल्य नीति
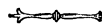
कौटिल्य अर्थशास्त्रमें शत्रुको पराजित करने और नष्ट कर डालनेके लिये अनूठी विधियाँ बतायी गयी हैं, जो ये हैं—शत्रुके घरोंको जला डालना, कतिपय चूर्णोंके धुएंसे उसे तुरन्त मार डालना या ऐसे चूर्ण देकर उसे धीरे-धीरे एक महीनेमें मृत्युके मुँहमें झोंक देना, धुएँ द्वारा उसके पशुओंको नष्ट कर देना, जहाँ तक हवा उस धुएँको फैला सके, अंधा कर देना , उसके पानीमें विष मिला देना, धुएं द्वारा पागल बना देना, कुष्ट पैदा कर देना, सुजाक, क्षय और ज्वरकी बीमारी पैदा कर देना, जीभ नष्ट कर देना। किसी आदमीसे किसी दूसरे आदमीको दाँतसे कटवाना और उस दाँत काटे हुएसे दूसरोंको दाँत कटवाना, कुछ चीजोंके दर्शन-मात्रसे मृत्यु पैदा करना, आगको बिना बुझे प्रज्वलित रखना आदि।

जो पारिभद्रक, प्रतिबला, वानजुला, वज्र और कदलीकी जड़ोंके कल्प के साथ, मेढ़कके मांसके रक्ताभरसमें मिलाकर पकाये हुए तेलका अपने पैरोंमें लेप कर लेता है, वह आगके ऊपर कोई हानि उठाये बिना बेखटके

चल सकता है। पुस्तकमें ऐसे नुसखे (योग) भी दिये हुए हैं, जिनके द्वारा आदमी दहकते हुए अंगारों पर ऐसे आरामके साथ चल सकता है, जैसे गुलाबके फूलोंकी सेजपर, अग्निको तूफानमें भी प्रज्वलित रख सकता है और ऐसी भी दवाइयां लिखी हैं, जिनके द्वारा आदमी पचास और यहां तक कि सौ योजन तक चल कर भी नहीं थक सकता। ऐसी भी दवाइयां और यंत्र हैं, जिनके लगा लेनेसे रात्रिके घोर अंधेरेमें भी देख सकता, अदृश्य होकर गमन कर सकता, पशु-पक्षियोंको अदृश्य कर सकता, किवाड़ोंके स्वतः खुल जाने और भीतरके लोगोंको सुला दे सकता है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकारके कितने ही आश्चर्यजनक कार्य कर दिखानेके योग वर्णित हैं।

'हनूज देहली दूर अस्त'

हम यह उक्ति प्रायः सुना करते हैं। इसका अर्थ यह है—'दिल्ली अभी दूर है', मांटेगू-चेम्पफोर्ड रिपोर्टका अन्त इसी कहावतसे किया गया था। लोगोंको इसका अभिप्राय जाननेकी उत्सुकता रहती थी। किस तरह इसका आरंभ हुआ, इसकी भी एक कहानी है, जो इस प्रकार है—जब गाजीउद्दीन तुगलक बंगालका सूबेदार था, उसका बेटा मुहम्मद उसके विरुद्ध बगावतका झंडा खड़ा करनेकी सोचने लगा। वह दिल्ली में था। बापको बेटेके विचारका हाल किसी तरह मालूम हो गया। उसे संदेह हो गया कि दिल्लीका एक बड़ा पीर औलियाकी उसके साथ सांठगांठ हैं। गाजीउद्दीनने उसे कहला भेजा कि मैं तो दिल्लीका सुलतान हूं और आप हैं धार्मिक राज्यके सुलतान। मैं दिल्ली आ रहा हूं। चूंकि वहां एक समय दो सुलतान रह नहीं सकते, इसलिये आप वहांसे चले जायँ। तभी उस पीरने गाजी उद्दीनको कहला भेजा था— 'हनूज देहली दूर अस्त।' पीछे जो घटना घटी, उससे पीरका जवाब ठीक उतरा। जब गाजी उद्दीन दिल्लीके लिये रवाना हुआ और एक

ऐसे स्थान पर पहुंचा, जहांसे दिल्ली बारह मील रह जाती थी, तब उसका स्वागत उसके अपने बेटेके सिवा और कौन करता ? बापको बागी बेटे द्वारा किये गये स्वागतसे बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन वहां तो पहले ही से यह प्रबन्ध कर रखा गया था कि जब वह अपने हाथी पर सवार उस शामियानेके भीतर घुसे, जो उसके स्वागतार्थ खड़ा किया गया था, तब वहां तम्बू, शामियाना आदि जो कुछ भी खड़ा किया गया है, वह सब उसके सिर पर गिर जाये। योजना सफल हुई और दिल्ली फिर भी दूर ही रह गयी।

× × ×

भवानी तलवार

एडवर्ड टामसन लिखता है :—"शिवाजीकी जिस भवानी तलवारके विषयमें इतनी कहावतें प्रसिद्ध हैं, उसकी सतारामें एक खास मंदिरमें अब भी पूजा होती है। प्रसिद्ध है कि इसका अद्भुत प्रभाव है। पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्रियाँ इस तलवारसे चीरा हुआ पानी पिया करती हैं और कहा जाता है कि इसका सन्तोषजनक परिणाम हुआ करता है। यह भी कहा जाता है कि अप्रेल १८१८ ई० में जब चौदह दिन तक गोलाबारी होनेके बाद रामगढ़का पहाड़ी किला समर्पण किया गया था, तो यह तलवार विंडसर कैसिलमें भेज दी गयी थी।

× × ×

राष्ट्रपति निर्वाचित

डा० पट्टाभिके जयपुर वाले कांग्रेस-अधिवेशनके लिये सभापति निर्वाचित कर देशवासियोंने अपने एक सुयोग्य और कर्मठ गांधी-भक्त नेताका जो सम्मान किया है, उससे सभीको भारी संतोष हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं है। अब उनके इस निर्वाचनके सम्बन्धमें कुछ खास-

खास बातोंका उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि उसके बिना पुस्तक अधूरी-सी रह जायेगी। हमारे चरित्रनायकके लिये यह कुछ कम गर्व और गौरवकी बात नहीं है कि कांग्रेसके सभापति डाक्टर राजेन्द्र प्रसादके बहुत प्रयत्न करने पर भी राष्ट्रपतिका निर्वाचन निर्वि-रोध नहीं हो सका, तो भी उन्होंने विजय पानेके लिये किसी प्रकारका संघर्ष नहीं किया। डा० पट्टाभिने एक महत्वपूर्ण वक्तव्य निकाल कर निर्वाचकोंको बता दिया कि क्यों वे उम्मेदवार बने हैं, निर्वाचित होनेके कैसे अधिकारी हैं और निर्वाचित होने पर किस प्रकार गांधीवादके झंडेको ऊँचा रखते हुए राष्ट्रकी सेवा करेंगे। बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडनसे उनका मुकाबला था, उन्होंने भी चुनावको संघर्षमय बनाने वाली कोई बात नहीं की। दोनों देशभक्त उम्मेदवारोंके कतिपय समर्थकों और प्रशंसकोंने अपने-अपने उम्मेदवारके लिये यथासंभव अधिकसे अधिक वोट प्राप्त करनेके जो प्रयत्न किये, भी वे ऐसे शान्तिपूर्ण ढंगसे और मर्यादाके भीतर रहे कि उनके सम्बन्धमें अन्य लोगोंको बहुधा कुछ मालूम ही नहीं होने पाया। महात्मा गांधीने जबसे देशकी बागडोर अपने हाथमें ली थी, तबसे एक दो उदाहरणोंको छोड़ कर कांग्रेसका अध्यक्ष वही निर्वाचित हुआ करता था, जिसे वे उपयुक्त समझ कर पसंद करते थे। स्वराज्य प्राप्त होनेके पहले तो जो कोई राष्ट्रपति चुना जाता था, उसके मस्तक पर वास्तविक अर्थोंमें 'कांटोंका मुकुट' आता था, किन्तु देखा जाय तो आज भी महात्मा गांधीके आदर्शको प्राप्त करनेके लिये इतना अधिक करनेको शेष है कि कांग्रेसके राष्ट्रपतिको 'रामकाज कीन्हें बिना मोहिं कहां विश्राम' वाली भावनासे ही अहर्निश अथक परिश्रम करना होगा।

जैसा कि पाठकोंको मालूम हो चुका है, जयपुर वाले कांग्रेस-अधि-वेशनके सभापति पदके लिये आरम्भमें इन छः नेताओंके नाम प्रस्तावित हुए थे—वर्त्तमान सभापति डा० राजेन्द्रप्रसाद, श्री शंकरराव देव, आचार्य कृपलानी, पुरुषोत्तमदास टंडन, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष और

डा० पट्टाभि सीतारमैया । डा० राजेन्द्रप्रसादने निर्वाचनको निर्विरोध बनानेका पूरा प्रयत्न किया और वह इस अंश तक सफल भी हुआ कि अन्तमें अन्य सभी सज्जनोंके हट जानेसे मैदानमें केवल दो ही उम्मेद-वार डा० पट्टाभि और टंडनजी रह गये। इन्हीं दोनोंका मुकाबला था और उस मुकाबलेमें डा० पट्टाभिको सफलता प्राप्त हुई । हमें विश्वस्त-सूत्रसे यह मालूम है कि डा० पट्टाभिने पहले ही महात्मा गांधीके राज-नीतिक उत्तराधिकारी नेहरूजीसे और वैसे ही सरदार पटेलसे मिल कर यह पूछ लिया था कि वे किसी खास उम्मेदवारको तो नहीं पसंद करते हैं। जब उन दोनों ही ने 'नहीं' में उत्तर दिया, तब भी डाक्टर साहब ने उन्हें यह विश्वास दिलाया था कि यदि वे लोग किसी खास आदमी को पसंद करेंगे, तो उसके विरुद्ध वे (डा० पट्टाभि) कदापि न खड़े होंगे। वैसे किसी-किसी समय प्रचारकोंने नेहरूजी और सरदार पटेलके नाम भी घसीटने चाहे थे, किन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके कार्यालय से साफ शब्दोंमें यह प्रकट कर दिया गया कि ये दोनों ही नेता चुनावमें पूर्णतया तटस्थ हैं। निर्वाचनके लिये उम्मेदवार बननेका अंतिम निश्चय कर लेने पर डा० पट्टाभिने जो वक्तव्य निकाला था, वह इस प्रकार है :—

निर्वाचनका घोषणा पत्र

"निर्वाचनोंमें खड़े होनेवाले उम्मेदवार प्रायः ऐसा कहा करते हैं कि वे मित्रोंके कहनेसे खड़े हुए हैं। लेकिन मैं तो वैसा न कह साफ कह देना चाहता हूं कि मैं किसी मित्रके दबावसे नहीं खड़ा हुआ हूं। हैदराबादके आत्मसमर्पणके पूर्व में यह संकल्प किये हुए था कि जब तक भारतकी एक अंगुल भर भूमि दासत्वमें रहेगी, मैं दृढ़तापूर्वक एक साधारण कार्यकर्त्ताकी हैसियतसे जनता और राष्ट्रीय सरकारकी सेवा करता रहूंगा। लेकिन जब मैंने सुना कि भारतकी सामन्तशाहीके अन्तिम दुर्ग हैदराबादका पतन हो गया, तब मैंने पुराने संकल्पसे अपने को मुक्त समझ लिया, क्योंकि निजामके आत्म-समर्पणसे सम्पूर्ण भारत

स्वाधीन हो गया। उसी दिन सन्ध्याको मेरे मस्तिष्कमें आया कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष-पदका आगामी वर्षके लिये मैं उम्मेदवार बनूंगा। लोगोंको इसमें कुछ अनुचित दंभ तथा आत्म-प्रदर्शनकी भावना दिखाई पड़ सकती है, किन्तु सत्य तो सदा सत्य है। मैं सत्य छिपा नहीं सकता हूँ। असलियत यही है कि मैंने उसी विचारसे प्रेरित होकर निर्वाचनके लिये खड़े होनेका निश्चय किया।

"वर्त्तमान परिस्थितिमें मुझे सन् १९३९ की एक छोटी-सी घटना स्मरण हो आती है। उस वर्ष बारदोलीमें कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीकी बैठक हुई थी, जिसमें मौलाना अबुल कलाम आजादको कांग्रेसके सभापति-पदके लिये उम्मेदवार खड़ा करनेका निश्चय हुआ था। मैं भी वहां उपस्थित था। कमेटीकी बैठककी समाप्ति पर मैं बारदोलीसे मसलीपट्टम लौट आया। किन्तु वहां कठिनाईसे केवल कुछ ही घंटे ठहरा होऊंगा कि महात्मा गांधीने मुझे अचानक ही अविलम्ब बुला भेजा। वहां जाने पर मुझे आदेश मिला कि मैं घोषणा-पत्रके रूपमें चुनाव सम्बन्धी वक्तव्यका एक मसौदा तैयार करूं और कहा गया कि मुझे ही चुनाव लड़ना होगा। उस समय मुझे यह नहीं मालूम था कि मुझे श्री सुभाषचन्द्र बोस—जैसे अच्छे प्रबल प्रतिद्वन्द्वी उम्मेदवारका सामना करना पड़ेगा। मैंने निजी वक्तव्यके तौर पर एक घोषणा-पत्र तैयार कर दिया, जिसके अन्तमें स्वयं महात्मा गांधीने अपनी ओरसे एक पैराग्राफ लिखकर जोड़ दिया। उन्होंने उसमें मेरे द्वारा देशी रियासतोंमें किये गये सार्वजनिक कार्योंकी ओर संकेत किया था। मेरा कार्यक्षेत्र प्रधानतः देशी रियासतें रही हैं, जहांकी जनताकी स्वतन्त्रताके लिये मैं कार्य करता रहा हूँ। उस दिन तक मेरा विचार था कि मैंने रियासती जनताकी जो सेवा की है, संतोषप्रद नहीं है। पर गांधीजीका पैराग्राफ पढ़कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। गांधीजीने अपने शब्द मेरे मुँहमें रख कर यह लिखा था—"यदि मैं निर्वाचित हो गया, तो अपनी उस सफलताको समझूंगा कि मैंने देशी रियासतोंकी जनताकी

जो सेवा की है, उसकी देशने प्रशंसा की है और मेरा निर्वाचित होना उस प्रशंसाका प्रमाण-पत्र है।

"यह सही है कि पिछले दिनों भी भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके चुनावमें प्रतिद्वन्द्विता अथवा समर्थन, विरोध आदि हो जाया करते थे, फिर भी महात्मा गांधीकी पसन्द सर्वोपरि मानी जाती थी। उनकी पसन्दका ही कोई उम्मेदवार स्वीकार कर लिया जाता था और चुनावकी कार्रवाई तो उस स्वीकृतिपर नियमानुसार कांग्रेसके डेलीगेटोंकी भी स्वीकृतिकी मुहर लगवा लेनेके लिये हुआ करती थी। किन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि उनकी दुःखद मृत्यु हो गई और परिणामस्वरूप सारी अवस्थाएं ही बदल गयीं। अब जिनके कंधोंपर गांधीजीका भार आ पड़ा है, वे उम्मेदवारी आदि जैसी कार्रवाईको एक अनावश्यक झंझट और परिश्रम मानते हैं। मैं अपनी उम्मेदवारीके सम्बन्धमें केवल कुछ ही दावा रखता हूं। प्रथम यह कि मैं देशका एक पुराना सेवक हूं और द्वितीय यह कि अवस्था और सेवामें बृहत्तम तथा उच्चतम कार्यकर्त्ताओंमें से एक हूं। इस उच्चताके दावेको भ्रष्ट और कलङ्कित करनेके लिये अब तक मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है। कांग्रेसके मेरठवाले गत अधिवेशनके कुछ समय पूर्व महात्मा गांधीने मुझे अपने निकट बुला भेजा था और एक प्रातःकाल टहलते समय उन्होंने मुझसे उस वर्षके कांग्रेस के सभापतिके चुनावके प्रश्न पर वार्त्तालाप किया। उन्होंने बताया था कि वे दोको पसन्द करते हैं, प्रथम तो आचार्य कृपलानी और द्वितीय था मैं। किन्तु फिर उन्होंने यह भी बताया था कि आचार्य कृपलानीकी अपेक्षा वे मुझे अधिक पसन्द करते हैं। मैंने गांधीजीको उत्तर दिया कि "आप तो जानते ही हैं कि मैं कभी किसी पदके लिये लालायित नहीं हुआ और साथ ही यह भी तो है कि आपकी जैसी इच्छा होगी, वैसा ही अन्तिम निर्णय होगा।

"मेरा कांग्रेससे सर्वप्रथम सम्बन्ध १८६८ ई० में हुआ था। तब मैं बी० ए० क्लासका एक विद्यार्थी था। पीछे मैं डाक्टर हुआ। १६१६

ई० में मैंने डाक्टरी छोड़ दी और एक देश-सेवककी हैसियतसे राष्ट्रीय कार्य करना तय किया। मेरा सदासे यही विचार रहा है कि कांग्रेस अपना दृष्टिकोण समाजवादी रखे। जनताकी आवश्यकताओं और मांगकी अतिशयता और वर्त्तमान राष्ट्रीय सरकारके मंत्रियोंकी समाधानकी चेष्टा और व्यवहारिक, किन्तु सीमित सफलताके बीच खड़ी होकर कांग्रेस अतीव तटस्थ और दोषशून्य भाव अपनाये। कांग्रेसके सामने दो प्रमुखतम कार्यक्रम हैं—उसे अपने आंतरिक सङ्गठनको सुदृढ़ बनाना है और अपनी शारीरिक सफाई करनी है। कांग्रेससे सम्बद्ध विविध जनशक्तियों (संस्थाओं) को आत्मशुद्धि द्वारा अपनी सारी भीतरी गन्दगी दूर करनी होगी। यदि देशके कांग्रेसजन ऐसा समझते हों कि मुझसे उन्हें सहयोग मिलेगा और देशका कुछ कार्य हो सकेगा, तो मैं विश्वासपूर्वक उन्हें अश्वासन देता हूं कि हमारे पूज्य नेता स्वर्गीय महात्मा गांधीने राजनीतिक क्षेत्रमें जिन आदर्शोंकी मर्यादा स्थापित की थी, उन्हें पूर्णतया सुरक्षित रखनेके लिये मैं प्राणपनसे चेष्टा करूँगा और जहां भी आवश्यकता होगी, वहां दूने उत्साहसे काम करूगा।"

बधाईयाँ और धन्यवाद
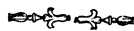
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके जेनरल सेक्रेटरी आचार्य युगलकिशोरने डा० पट्टाभिको निर्वाचित घोषित करते हुए बताया था कि डा० पट्टाभिको कुल एक हजार एक सौ निन्नानवे वोट मिले हैं और श्री पुरुषोत्तमदास टंडनको एक हजार पचासी। इस तरह डा० पट्टाभि एक सौ चौदह वोटोंसे विजयी हुए हैं।

श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडनने अपने प्रतिद्वन्द्वी डा० पट्टाभिके पास निम्न बधाईका तार भेजा था,—"आपके राष्ट्रीय कांग्रेसका सभापति चुने जाने पर मेरी ओरसे हार्दिक बधाई है।"

भारतके उप-प्रधानमंत्री सरदार पटेलने डा० पट्टाभिको बधाई, इस रूपमें दी थी—"श्रमसे मिली हुई सफलताके लिये आपको मेरी बधाई है।"
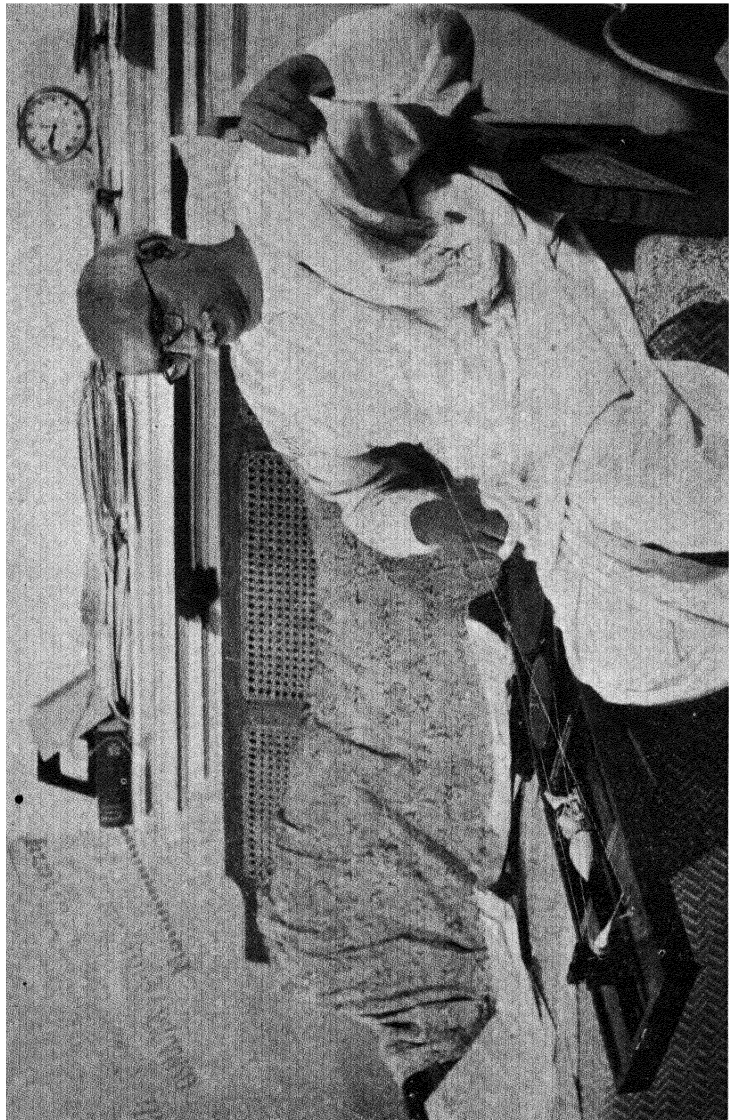
राष्ट्रपति डा० पट्टाभि सीतारमैया चरखा कात रहे हैं।

वर्त्तमान विकट समयमें आपको अपने दायित्वोंकी पूर्त्तिके लिये बधाईसे अधिक हमारी सहानुभूति और सहयोगकी आवश्यकता होगी, जिसके लिये मुझे यह विश्वास दिलानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि वह आपको पर्याप्त मात्रामें प्राप्त होगी।"

राष्ट्रपति निर्वाचित होने पर डा० पट्टाभिको देशके सभी भागोंसे बधाईके इतने अधिक संदेशे प्राप्त हुए कि प्रत्येकका पृथक्-पृथक् उत्तर भेजना उनके लिये संभव नहीं रहा। तब २० नवम्बरको एक वक्तव्य पत्रोंमें उन्होंने इस आशयका प्रकाशित कराया—मैं चाहता था कि प्रत्येक संदेशका व्यक्तिगत रूपसे उत्तर दूं, परन्तु यह असंभव मालूम होने लगा है। तारों और पत्रोंकी संख्या हजारों तक पहुंच गयी है और अब भी तांता बंधा ही हुआ है। अब एक महीना पूरा हो रहा है। इसलिये मैं समाचारपत्रोंकी सहायता चाहता हूं कि वे सम्बन्धित व्यक्तियों तक मेरा हार्दिक धन्यवाद पहुंचा दें।

कांग्रेस नये युगमें

राष्ट्रपति निर्वाचित होनेके बाद ही डा० पट्टाभिका मद्रासमें जो अभिनन्दन हुआ था, उस अवसर पर दिये गये व्याख्यान और पत्र-प्रतिनिधियोंको दिये हुए वक्तव्योंमें डा० पट्टाभिने ये महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये थे—

अब कांग्रेसके सामने भविष्यके लिये समस्या यह है कि इसका संगठन एक ऐसी संस्थाके रूपमें किस प्रकार किया जाये, जो सरकारोंके केन्द्रीय और प्रांतीय दोनों ही क्षेत्रोंकी सरकारोंके कार्योंकी निगरानी कर सके, और घरके प्रधानकी भांति व्यवस्था-सभाओं, कांग्रेस पार्टियोंका पथ-प्रदर्शन कर सके और उन्हें नेक सलाह दे सके। फिर कांग्रेसको पार्लमेंटकी गैर-सरकारी द्वितीय सभा (या पार्टी) की भांति भी काम करना चाहिये, जो एक ओर तो नीति निर्धारित कर सके और

दूसरी ओर पार्टीके जल्दीमें उठाये हुए कदम पर फिरसे विचार कर सके, उसे काबूमें रख सके और रोक सके। सर्वोपरि बात तो यह होनी चाहिये कि यह पार्टीके मस्तिष्कका काम करे और उसकी पथ-प्रदर्शक हो, जिसके सदस्योंको मिनिस्टरोंकी भांति समय और फुर्सत मिलनेमें बड़ी कठिनाई होती है। कांग्रेस इन विमल उद्देश्योंकी सिद्धि, उसी अंश तक कर सकती है, जहां तक यह अपने ढांचेके अखंड और अपने कर्त्तव्योंकी पवित्रताको रख सके, कांग्रेसको अपने उत्कृष्ट बौद्धिक एवं नैतिक गुणोंसे व्यवस्था सभाके पार्टी संगठनोंके कार्यको मिटानेका नहीं, बल्कि उसकी पूर्त्तिका काम करना चाहिये। हमारे राष्ट्रकी प्रगतिमें यह स्पष्ट ही नाज़ुक घड़ी है और हमारा प्रयत्न गांधी-वादके झंडेको ऊंचा रखनेका होगा। हमारे लिये राष्ट्रीय और मानवीय उत्थानके लिये सत्यकी तलवार और अहिंसाकी ढालसे बढ़कर और कोई हथियार नहीं हो सकता, जिसका प्रयोग महात्मा गांधीने अपने जीवन भर किया है।

कांग्रेसने देशके भीतर अब द्वितीय स्थान ग्रहण किया है, आखिर सास सदाके लिये घरका शासन करनेकी आशा नहीं कर सकती। कांग्रेसको चाहिये कि वह पार्टीको अधिकार दे देना सीख ले। पार्टी ही मिनिस्ट्रियोंका निर्माण करती है और मिनिस्टरोंको शक्तिके लिये पार्टीकी ओर अवश्य देखना होगा। कांग्रेसको तो केवल उसी अवस्थामें बीच में पड़ना चाहिये, जब पार्टी अपना कर्तव्य न पूरा करती हो, लोकतंत्रसे चुने हुए नेताको स्वाधीनतापूर्वक राजकाज चलानेका अधिकार है। कार्य होनेमें शीघ्रता हो, इस विचारसे पार्टीको अपना अधिकार अपनी कार्यकारिणीको देना पड़ेगा और कार्यकारिणीको देना होगा अपनी सब-कमेटीको। इससे आप देख सकते हैं कि लोकतंत्र किस तरह काम करता है। अन्तत: यह तो एक सीमित संख्याके आदमियोंका शासन होता है। लोकतंत्र काम करेगा, क्योंकि ऊपर परमात्मा है, जो गलती करने पर हमें ऊपर उठायेगा। अधिकार और शक्ति इस तरह सौंपनेकी क्रिया होते-होते

वह एक आदमी—प्रधान मंत्रीके हाथमें इकट्ठा हो जायगी। प्रधान मंत्री बनानेके लिये हमें न तो किसी सन्तकी आवश्यकता है और न किसी उपद्रवीकी, हमें एक ऐसे सच्चे दिलके आदमीकी आवश्यकता होगी, जो कठिन श्रम करे। लोकतंत्र एक मंत्र है और उस मंत्रमें प्रधान पुरुष, प्रधान संचालक और चालक प्रधान मंत्री है और हमें उसके अधिकारको अवश्य स्वीकार करना चाहिये। इतना कर चुकनेके बाद हमें अपनी सुरक्षित शक्तिके ऊपर भरोसा करना चाहिये कि यदि कर्तव्य-पालनमें भूल या टालमटोल होगी, तो वह संभालनेके काम आयगी। बाहरमें मस्तिष्कका काम करने वाली एक संस्था होनी चाहिये, जिससे वह यंत्रको नियंत्रणमें रख सके और उसकी पथ-प्रदर्शक हो। लोकतंत्र एक ऐसी वस्तु है, जिसे हमारे देशमें अभी समझना है, क्योंकि यहां दायित्वपूर्ण शासनकी परम्परा उन्नत नहीं हुई है। हम किसी असेम्बलीके भीतर आपसमें एक दूसरेसे लड़ सकते हैं, किन्तु यदि हम बाहर मिलकर काम नहीं कर सकते, तो दायित्वपूर्ण शासनके योग्य नहीं होंगे। हमें दायित्वपूर्ण शासनकी कलाकी अभ्यास द्वारा शिक्षा प्राप्त करनी होगी। इस बड़े कार्यमें कांग्रेस निरीक्षक और संभाल करने वाली होगी। कांग्रेस मस्तिष्ककी भाँति काम कर सकती है, किन्तु यदि यह शासन-व्यवस्थाके दिन प्रतिदिनके कामोंमें हस्तक्षेप करनेका प्रयत्न करेगी, तो यह छिन्न-भिन्न हो जायगी।

कांग्रेस अब बिलकुल ही नये युगमें प्रवेश कर रही है, कांग्रेस के दूसरे संस्करणमें यह प्रथम अध्याय है। अब यह कांग्रेस स्वतंत्र भारतमें है। भारत अभी केवल बन्धन-मुक्त हुआ है, इसे अब स्वाधीन बनना होगा। हमें बहुतसी अनावश्यक वस्तुएँ—जैसे कोट—दूर फेंक देनी होगी, जो अतीत की निशानी है। प्रत्येक वकीलको यह सोचना चाहिये कि कानूनमें किस तरह सर्वोत्तम सुधार किया जा सकता है। सर्जन जनरल को इसके लिये मत संग्रह करना चाहिये कि चिकित्सा पद्धति की क्यों कर पुनर्व्यवस्था होनी चाहिये। स्थानिक संस्थाओं वाले विभागके

मंत्रीको यह सोचना चाहिये कि स्थानिक संस्थाओंकापुनर्सङ्गठन सर्वोत्तम ढंगसे किस प्रकार हो सकता है ? मध्यकाल कठिन होगा। हमें प्राचीन और नवीनमें सामंजस्य स्थापित करना होगा। हमारे सामने काम बहुत भारी है। महात्मा गांधी हमारे लिये जो आदर्श छोड़ गये हैं हमें उनमें निष्ठा रखते हुए बड़ी बुद्धिमानी और दूरदर्शितासे पुनर्निर्माण तथा संगठन करना है।

स्वतंत्रताका विश्लेषण

२१ नवम्बर १९४८ को दिल्ली में वहांके नागरिकों तथा सत्तरसे अधिक संस्थाओं की ओरसे डा० पट्टाभिका राष्ट्रपति निर्वाचित होनेके उपलक्षमें जो अभिनन्दन किया था, उसके लिये हृदय से आभार मानते हुए उन्होंने निम्न विचार प्रकट किये थे—"यद्यपि मैं आन्ध्र प्रान्त का निवासी हूं, फिर भी दो वर्षसे दिल्लीका नागरिक बन गया हूं। मैंने यहांके म्युनिसिपल चुनावमें मतदानका अधिकार प्राप्त कर लिया है, जिसके लिये उम्मेदवार मेरे पास आयेंगे। दिल्ली एक ऐसा स्थान है, जहां देशके सभी भागोंके प्रतिनिधि विधान-परिषद्में भाग लेनेके लिये आते हैं। जो समस्त देशका विधान तैयार कर रही है, जब लोगोंसे कहा गया कि स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने पर कोई कर या लगानका कानून न रह जायगा, तो उन्हें गलत बात बतायी गयी थी। वास्तविक बात यह है कि स्वतंत्रताकी प्राप्तिके पश्चात् देशकी आयका व्यय करनेका पूरा अधिकार जनताके प्रतिनिधियोंके हाथमें आ जाता है और उस अधिकारका उपयोग जनताकी भलाईके कामोंमें करते हैं, न कि अपने स्वार्थोंको पूर्ण करनेमें जैसा कि विदेशी सरकार किया करती है। भारतके प्रजातंत्रीय विधानके अन्तर्गत धनिकों, निर्धनों, छोटों और बड़ों—सबको समान अधिकार प्राप्त होंगे। दरिद्रनारायण और दलितों को, आवश्यक सहायता देकर सेवा की जायगी। यह सरकार

की आकाँक्षामात्र नहीं रहेगी, बल्कि कार्य रूपमें परिणत की जायगी। स्त्रियों और पुरुषोंके अधिकारोंमें कोई अन्तर नहीं माना जायगा। इंगलैंडमें स्त्रियोंको अपने अधिकारोंके लिये बहुत दिनों तक झगड़ना पड़ा था, परन्तु भारतमें स्वतंत्रता प्राप्त होते ही उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में बराबरी का अधिकार प्राप्त हो गया है। यह अवश्य है कि स्वतंत्रताकी प्राप्ति होनेके साथ ही सरकारके सामने लाखों मनुष्योंके रक्तपात और संहारके साथ ही शरणार्थियोंके पुनर्वासकी व्यवस्था करनेकी समस्या आ खड़ी हुई, जिसकी ओर उसे अपना पूरा ध्यान लगाना पड़ा। पांचसौ बासठ देशी रियासतोंका भी प्रश्न हल करना तत्काल आवश्यक होगया, क्योंकि ब्रिटिश सरकारने उन्हें स्वतंत्र करके देशाकी एकताको खतरेमें डाल दिया था। हैदराबादका प्रश्न अभी अभी हल हो चुका है और काश्मीरकी समस्या भी हल हो जायगी। हमारी सरकारने इस तरह बहुत थोड़े समयमें ही बहुत भारी काम किया है। हमारी सरकार एक महान् स्तंभके समान है, जिसके आधार सात लाख गाँव और इतने अधिक नगर हैं और शिखर पर हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलालजी विराजमान हैं। भारत विश्वशान्ति बनाये रखनेमें बहुत प्रभावशाली सिद्ध होगा, यह बात हमारे प्रधान मंत्रीकी हालकी विदेश-यात्रासे प्रमाणित होगयी है।

गांधीजीके आदर्शोंसे विश्वकी मुक्ति

दिल्लीके एक स्वागत-समारोहके अवसरपर डा० पट्टाभिने अपने भाषणमें यह कहा—स्वतन्त्रता आ गयी, पर लोगोंके भावमें प्रायः कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ है। लोग अपने अधिकारों और विशेषाधिकारोंके लिये तो कोलाहल मचाते हैं, परन्तु अपने दायित्वोंको समझते नहीं मालूम पड़ते। इसका कारण यह है कि उन्हें राजनीतिक शिक्षा नहीं मिली है और अबतक वे उन दायित्वोंको संभालनेके लिये

आगे नहीं आये, देश अपने उन आदर्शोंको प्राप्त करनेकी आशा नहीं कर सकता, जिन्हें राष्ट्र-पिताने सामने रखा था। यह सोचना ही कि हमारा भविष्य हमारे नेताओंके हाथमें सुरक्षित है, जनताके ऊपर अहितकर प्रभाव पैदा कर सकता है। अखिल विश्वकी एक सरकार बनानेकी चर्चा की जाती है, लेकिन वह तभी सम्भव हो सकती है जब विश्वके लोग उन आदर्शोंको सच्चे दिलसे स्वीकार करें और उनपर प्रभावपूर्ण ढंगसे चलें, जिनका उपदेश महात्मा गांधीने किया है। वे हैं सत्य एवं अहिंसाके आदर्श। जो संसार परस्पर-विरोधी राजनीतिक आदर्शोंका तीन-तेरह हो रहा है, उसका वर्त्तमान शोचनीय अवस्थासे उद्धार तो तभी किया जा सकता है, जब वास्तवमें हृदय-परिवर्त्तन हो, तलवार चमकानेसे कदापि नहीं। जब संसारका कोई शक्तिशाली राष्ट्र अपने लम्बे-चौड़े दावे कम या ढीले करनेको तैयार नहीं हैं, तब विश्व-संघ या मानव जातिकी पार्लमेंटके लक्ष्यकी प्राप्ति करनेकी आशा करना धोखा मात्र है, विश्वकी मुक्ति महात्मा गांधीको शिक्षाओंका पालन करनेमें है। गांधीजीने जीवनका जो रास्ता बताया है, उसे भारतीयोंने पूर्ण रूपसे न तो समझा है और न उसका मूल्य अनुभव किया है। मेरी अपील अपने देशवासियोंसे यह है कि हमारे नेताने त्याग और सेवाकी जो भावना दिखायी है, उसे ग्रहण करें और विश्वमें शांतिकी वृद्धिके लिये कार्य करें, किन्तु मुझे अपनी इस अपीलका अनुकूल उत्तर मिलनेमें सन्देह है और वह, यह देख कर कि बहुतसे भारतीयोंने महात्माजीके जीवनकालमें भी उनके विचारोंका आदर नहीं किया था।

देश और धर्ममें अन्तर नहीं

अखिल भारतीय आर्य परिषद् द्वारा आयोजित समारोह के अवसर पर नयी दिल्लीमें डा० पट्टाभिने अपने भाषणमें इस आशयके विचार प्रकट किये—देश और धर्म में कोई विभेद नहीं है। दोनोंकी एक ही मर्यादा है, जो देशकी सेवा करते हैं, वे धर्मकी भी सेवा करते हैं; क्योंकि सेवाका

रूप एक ही प्रकार है। वह अखंड और अविभाज्य है। पूर्वी पंजाब में सिक्खों और हिन्दुओंमें ऐसा भेद क्यों देखा जाता है? मेरी समझमें नहीं आता कि राजनीतिमें यह बटवारा क्यों किया जाय? सेवा शब्द की महत्ता जितनी बड़ी है, उसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति किसीकी कोई हानि किये बिना देशके लिये बड़ासे बड़ा कार्य कर सकता है। महात्मा गांधी इस प्रकारकी सेवाके मूर्तिमान रूप थे। जब उन्होंने साबरमती आश्रमकी प्रतिष्ठा करनेका निश्चय किया था, उस समय उनके पास एक पैसा नहीं था। आर्य समाजने सामाजिक, राजनीतिक और धर्मिक क्षेत्रोंमें जो काम किया है, उसकी मैं हृदयसे सराहना करता हूं और देशके नवयुवकोंको मैं यही परामर्श दूंगा कि धर्म एवं विश्वके लिये वे जीना सीखें।

सामाजिक सेवाका महत्व

गत २७ नवम्बरको दिल्लीमें प्रधान मंत्रीने जिस दिल्ली प्रांतीय समाज सेवा कानफरेंसका उद्‌घाटन किया था, उसके अध्यक्षके आसनसे डा० पट्टाभि सीतारमैयाने समाज-सेवाका महत्व बताते हुए गाँवोंका पुनरुद्धार करने और उन्हें लोगोंके निवासके लिये अधिक उत्तम और स्वास्थ्यकर बनाने पर जोर दिया और कहा कि सभी सामाजिक कार्य ऊपरसे आरम्भ करनेके बदले नीचेसे करना चाहिये। सरकारका कार्यक्षेत्र सीमित है और उसके लिये सभी प्रकारके सामाजिक कार्योंमें प्रवेश करना संभव नहीं है। फिर उसके पास इतने बड़े आयोजनको अपने हाथमें लेनेके लिये पर्याप्त संख्यामें न तो कार्यकर्त्ता हैं और न सामग्री ही। वह जो भी नया काम हाथमें लेती है, पग-पग पर वह यही देखती है कि पर्याप्त संख्यामें कार्यकर्त्ता नहीं हैं। कदाचित् इसका कारण यही है कि रातों रात उसे अपने देशका भाग्य संभाल लेना पड़ा। अतीतमें सामाजिक सेवा जैसे राष्ट्र-निर्माणके काममें सरकार सहायक

नहीं थी। ब्रिटिश सरकार सामाजिक समस्याओंको सुधारनेवाले कामोंके विरुद्ध भाव रखती थी, हां, मिशनवालोंने इस सम्बन्धमें बहुत कुछ किया था। अब अंग्रेज तो इस देशसे चले जा चुके हैं और आशा की जाती है कि ये धार्मिक मिशनरी भी चले जायंगे। इसलिये देशवासियोंको ही स्वयं उठ कर सामाजिक समस्याओंको संभालना चाहिये। वर्त्तमान शिक्षालयोंमें ठीक ढंगकी शिक्षा नहीं मिलती है। देशवासियोंको स्वतः अपनेको फिरसे इस तरह शिक्षित बनाना चाहिये। फिरसे राष्ट्र-निर्माणके कार्यमें सहायक बन सके। शरणार्थियोंकी समस्याको ही ले लीजिये। आप लोगोंमेंसे कितने ऐसे हैं, जो इन शरणार्थियोंको अपने घरोंके एक भागमें स्थान देनेके लिये तैयार होंगे? यह समस्या सरलतासे हल कर ली जा सकती है, यदि महलोंमें रहनेवाले लोग अपने भवनोंके एक भागको इन गृहहीन पीड़ित भाइयोंको टिकनेके लिये दे दें। हमारे प्रधान मंत्रीजी जब पहलेवाले बड़े भवनमें रहते थे, तब इन्होंने ऐसा ही किया था। लेकिन दूसरे लोगोंमेंसे कितने ऐसे हैं, जिन्होंने ऐसा किया है? युद्धकालमें इंगलैंड तथा अन्य देशोंमें प्रत्येक अपने घरमें गृहहीन हुए लोगोंको टिकानेके लिये बाध्य किये जाते थे। सरकारने प्रत्येक घरमें ऐसे लोगोंको टिकाया था। क्या भारतमें भी लोग यह चाहते हैं कि सरकार ऐसी बाध्यता लोगों पर ला दे? लोगोंको स्वेच्छासे अपने इन भाइयोंकी दुर्दशा अनुभव करनी चाहिये और उनके कष्टोंको घटानेके लिये अपनी शक्ति भर उद्योग करना चाहिये।

भारतमें समाजवाद

डा० पट्टाभिके समाजवाद पर क्या विचार हैं, यह उनके द्वारा लिखे गये लेखमें पढ़िये :—

भारतकी राजनीतिमें समाजवादी भावनाओंका विकास थोड़े समय से हुआ है। सन् १६१८ ई० में जब लखनऊके सर्व-दल सम्मेलनमें पं० जवाहरलाल नेहरूने समाजवाद पर विस्तृत रूपमें व्याख्यान दिया था, तो उसे सुनकर अवधके ताल्लुकेदार घबड़ा गये, जिनके प्रतिनिधि वहाँपर उपस्थित थे। इस कारण नेहरू रिपोर्टमें यह दफा जोड़नी पड़ी कि वैध तरीकोंसे प्राप्त जायदाद मालिकोंके अधीन ही निश्चित रूपसे रहने दी जायगी। मार्च सन् १६३१ ई० के गांधी-इर्विन समझौतेकी महान् घटना द्वारा सत्याग्रहकी उल्लेखनीय सफलता प्रदर्शित होनेके पश्चात् करांचीके कांग्रेस अधिवेशन (मार्च १६३१) में एक सामाजिक आर्थिक कार्य क्रम बनाया गया। किन्तु १६३२ ई० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ होने और भारतमें अंगरेजों द्वारा असंदिग्ध भाव धारण किये जानेके कारण जेलसे लौटे हुए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्गके कैदियोंमें अहिंसामें अविश्वास और उदासीनता छा जानेके कारण, समाजवाद और साम्यवादका एक शुष्क कार्यक्रम कार्यान्वित करनेकी बात उठी, जो सत्याग्रहके प्रतिकूल साधनोंके प्रति स्पष्ट पक्षपात द्वारा पूर्ण किया जानेको था। इतिहासकी भौतिक व्याख्या सत्य और अहिंसाके रहस्यमय और आध्यात्मिक सिद्धान्तोंके स्थानपर युद्धके भौतिक सिद्धान्तोंको ही प्रथम स्थान देगा। लखनऊमें कांग्रेसका जो अधिवेवन अप्रेल सन् १६३६ ई० में हुआ, उसमें समाजवाद और गांधी-

वादके आदर्शने उग्र रूप धारण किया, किन्तु वर्षके भीतर ही फ़ैज़पुर कांग्रेसमें (दिसम्बर १९३६ में) यह अनुभव किया कि समाजवादके भी भारतीयकरणकी आवश्यकता है। इससे कांग्रेसके अधिक उग्र विचारवालों और युवक दलके मस्तिष्कमें भी साम्यवादके ज्वारकी गतिमें परिवर्तन हुआ। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि अब भी उन्होंने उन तीन बातोंका अनुभव करना प्रारम्भ किया है, जो समाजका पोषण करती हैं, अर्थात् कानून, लोकमत और व्यक्तिगत चेतना या अन्तःकरण। इनमें अन्तिम सबसे प्रबल, अमोघ और अचूक है। यह अवश्य कहा जायगा कि समाजवाद एक जीवन-यापनके साधनकी अपेक्षा गौरव, त्याग रूपमें ही अधिक प्रचारित किया जा रहा है और एक जीवनका सिद्धान्त जो वस्तुतः गांधीवाद है, इसे ऐसा अङ्गीकार करता है। अहिंसाकी शक्ति स्वीकार कर लेनेपर हमारे सामने शक्तिका एक नया और अनन्त स्रोत प्रकट हो जाता है। गांधीजीका समाजवाद असाधारण क्षमता रखता है। वह एक भौतिक शक्ति नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति है, जो उस राष्ट्रीय शक्तिको पुनः उर्बर करती है, जो उपेक्षा के कारण ऊसर बन गयी है और भीतरसे सूखकर निर्जीव बन चली है। जब इस देशी रूपमें इस समस्यापर विचार किया जायगा, तो भारतके भीतर श्रम और मजदूरी एक विचित्र मिश्रणके रूपमें होनेका अनुभव तुरन्त किया जायगा। भारतमें केवल श्रम नहीं है और न केवल अवकाश ही है। यहाँ तो श्रम अवकाश है और अवकाश श्रम है। श्रम कला है, श्रम ही आनन्द और मनोविनोद है, श्रम कलाकारकी आत्मानुभूति और उसकी आत्माकी शान्ति है। भारतीय शिल्पकारके लिये श्रम और अवकाश उसी प्रकार विभाज्य नहीं हैं, जैसे उसका शरीर और आत्मा। भारतके इस सजीव दृष्टिकोणको ग्रहण करनेके बदले हमें पश्चिमकी क्रान्तियोंका अनेक परिवर्त्तित रूपोंमें निर्जीव अनुकरण कर समय नष्ट करनेके लिये आग्रह किया जाता है और यह अनुभव नहीं किया जाता है कि पाश्चात्य देशोंमें भी एक

क्रांतिके पूर्ण होनेमें पर्याप्त समय लगता है और उसके आगे बढ़ने तथा पीछे हटनेकी प्रत्येक अवस्थाका अनुकरण नहीं किया जा सकता। क्या हमें यह कहनेकी आवश्यकता है कि एक क्रांतिकी विभिन्न स्थितियां और रूपोंका अनुकरण करना एक पूर्ण सवाक् चित्रके लाखों चित्रोंमें से प्रत्येक चित्रको लेना है।

ग्रामोद्धार और उसकी समस्याएँ

भारतके ग्रामोंमें ही भारतका प्राण रहता है, जरा उस पर भी डा० पट्टाभिके विचार पढ़िये :—

आज ग्राम-सुधारसे प्रेम रखने वाले व्यक्तियोंकी एक बड़ी संख्या है। वे प्रायः ग्रामोद्धारकी समस्याओंके सम्बन्धमें सलाह और तजबीज पूछा करते हैं। इस समस्याका रूप क्या है और उसकी स्थिति कैसी है, ये ऐसी बातें हैं, जिनका गंभीरतासे अध्ययन करनेकी आवश्यकता है, जिससे इसे हल करनेके सिद्धान्त ठीक तौर पर उसी प्रकार ग्रहण किये जा सकें; जैसे सफल चिकित्साके लिये रोगका ठीक-ठीक निदान करनेकी आवश्यकता हुआ करती है। आइये पहले यह देखें कि हम लोगोंके गांवोंमें क्या खराबी आ गयी है। निश्चय ही आज गांवके लोगोंको संसारका पता अधिक रहता है, वे अच्छा पहिनते हैं और राष्ट्रीय सम्बन्धकी समस्याओं पर अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा अधिक योग्यतासे बातचीत और तर्क कर सकते हैं। फिर भी ग्राम-सुधारको एक अलग ही समस्या बताते हुए लोग यह आवाज उठा रहे हैं कि इसके अनेक पहलुओंका अध्ययन करनेकी आवश्यकता है और उसे हल करना चाहिये, जिससे राष्ट्रीय जीवनकी नींव यथार्थ रूपसे और ठीक-ठीक डाली जा सके प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंके बनने पर ग्रामोद्धार और उसकी समस्याएँ विशेष रूपसे सामने आयीं। तरह-तरहकी योजनाओंके प्रस्ताव इस सम्बन्धमें किये जाने लगे। मुर्गी पालने,

पशु पालने, मधुमक्खी पालने, शिल्प-जीवनकी उन्नति, मुख्यकर कताई और बुनाई, हाथसे चावलकी कुटाई, कोल्हूसे तेल पेरने, गुड़ बनाने, हाथसे कागज बनाने, हाथसे आटा पीसने आदि बातोंकी ओर लोगोंका ध्यान गया। कुछ अधिक नरम विचारोंके लोग खेतीके लिये अच्छे बीज, अच्छी खाद, खेतीकी उपजकी बिक्रीका अच्छा प्रबन्ध और अधिक मूल्यकी बातोंकी आवश्यकता पर जोर देने लगे। सरकारी बिभागोंने लोकशिक्षा और प्रचारके लिये मैजिक लैटर्न द्वारा लोकप्रिय शिक्षा, ब्राडकास्टिंग द्वारा विचारोंका तीव्रतासे प्रसार, सिनेमा द्वारा उन्नतिका दृश्य-प्रदर्शन, चलते-फिरते व्याख्यान, चलती-फिरती दूकानों और विज्ञप्तियोंके भरमारके साधन अपनाये। इस तरहके विचित्र प्रकारके विचारों और आदर्शोंके बीच लोग भ्रमित हो जाते हैं और यह निश्चय नहीं कर पाते कि ग्राम-सुधारके उद्देश्यमें सफलमनोरथ होनेके लिये कौनसा काम पहले हाथमें लें। इसलिये आवश्यकता यह है कि समस्याकी सारी जटिलताओं पर विचार कर एक ऐसा सरल सिद्धान्त निकाला जाये, जिसके द्वारा हमें उन गुत्थियोंको सुलझानेमें सहायता मिले, जिनमें गांवके लोग और उनकी बातें परस्परमें उलझ गयी हैं।

हम देखते हैं कि देश पर होने वाले विदेशी आक्रमणोंने हमारे ग्राम-जीवनकी समान गतिको उस समय तक प्रभावित नहीं किया था, जब तक पाश्चात्य राज्योंके लोग हमारे देशके भीतर नहीं आये थे। उनके आने पर भी तब तक अव्यस्थित होना प्रारम्भ नहीं हुआ था, जब तक कि साम्राज्यवादके बीज अपने दुहरे अंकुरों अर्थात् उद्योगवाद और सैनिकवादके साथ भापके इंजिनके आविष्कार और सभी हस्त-शिल्पोंमें यांत्रिक शक्तिके प्रयोगके रूपमें नहीं पनप उठे। सच पूछिये तो अंग्रेजों द्वारा भारतकी विजय बहुमुखी हुई। वह केवल भूमिगत और राजनीतिक ही नहीं, बल्कि औद्योगिक और व्यापारी भी हुई थी। किन्तु सफलता प्राप्त करनेके लिये वह विजय शिक्षा-विषयक एवं सांस्कृतिक भी हुई। मुगल भारत पर विजयी बननेके पश्चात् यही बस

गये थे और अपनी कला, अपने दर्शन और अपनी संस्कृतिको हम लोगोंकी कला, दर्शन और संस्कृतिसे उन्होंने संयुक्त कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि हम लोगोंकी राष्ट्रीय सम्पत्ति विस्तार और परिमाणमें समृद्ध हुई। ब्रिटेनने इसका विरोध किया। उसने अपनी व्यापारिक वस्तुएं, अपनी भाषा और साहित्य, अपनी परीक्षाएं और उपाधियां, अपनी संस्कृति और आदर्श हमलोगों पर लाद दिया। परिणाम यह हुआ कि भारतके गांव उजड़ कर कस्बोंमें जा बसे। हाथकी कारीगरीका स्थान कलोंने ले लिया, कौशलके श्रमके स्थान पर कौशलहीन श्रमकी उत्पत्ति हुई। श्रम अब पूंजी नहीं रह गया, वह व्यापारकी एक वस्तु बन गया। गाँवके लोगोंने कस्बोंमें आकर बसते जाने और नयी सभ्यता ग्रहण करते जानेके लिये जी-जानसे प्रयत्न करना आरम्भ किया। इस भाँति पुरानी व्यवस्था नयी व्यवस्थाके सामने झुक गयी। खेतीके प्रति अनुरक्ति शीघ्र समाप्त हो गयी और ग्रामीणोंके लिये नागरिक जीवन एक अनिवार्य आकर्षण बन गया। फिर तो सादा जीवन और उच्च विचारका सिद्धांत बदलकर ऊंचा जीवन और सादा विचार बन गया। पुराने उद्यमी जीवनके स्थानपर आलस्यमें सुखका जीवन बितानेकी चाह पैदा हो गयी। सरकारी नौकरियोंकी चाहने तो व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय दोनों प्रकारकी स्वतन्त्रताकी प्राचीन भावनाको नष्ट कर डाला। देशकी संस्कृतिका लोप हो गया और देशकी परंपराएं तक भुला दी गयीं।

न्यायकी अवस्थामें विदेशी शासनमें कितना भारी अन्तर आ गया! जहां पहले विवादके स्थानपर ही तुरन्त न्याय कर दिया जाता था, वहां ठाटबाटवाली कचहरियां खुल गयीं। मुकदमोंका ढंग जुएका-सा हो गया। झूठ कहने लायक दिखने लग गया। सचाईकी कोई पूछ नहीं रही। गवाही एक सिलसिलेवार बयानके रूपमें नहीं दी जा सकती, बल्कि धूर्त्त वकील द्वारा जिरहके असम्बद्ध प्रश्नों द्वारा मुंहसे निकलवाये हुए उत्तरोंके टुकड़े-टुकड़े जोड़कर वह बनायी जाती है। परिणामस्वरूप जो

बुरा है, वह भला दिखाई पड़ने लगता है, इस कारण विजय सत्यके जोरपर नहीं, बल्कि वादीके वकीलकी वाणीके जोर पर होती है। ईर्ष्या द्वेष बढ़ गया है और लोगोंमें वर्ण तथा सम्प्रदायके विषैले रूपकी मनोवृत्ति पैदा हो गयी। राष्ट्रीय जीवनके सभी रूपोंमें, विशेषकर चुनावों और नौकरियों में तनाव और दोष फैल गया। कलें प्रधान शक्ति बन गयीं। कर्त्तव्य का स्थान अधिकारने, सहयोगका प्रतिस्पर्द्धाने और प्रेमका स्थान घृणाने ग्रहण कर लिया। गांवके लोगोंमें विषाद और निराशाकी भावना छा गयी। समाजमें ऊंचे दर्जे तक पहुंचनेकी अनवरत अभिलाषाने इस आदर्श वाक्यको जन्म दिया कि, "अपने जीवनका मापदंड ऊंचा करो।" किन्तु ऊंचे होनेके स्थानमें उलटे वह नित्य नीचे गिर रहा है। मजदूरी श्रमपर हावी हो गयी है और धनने सेवाको पीछे कर दिया है। यदि क्लाइव और हेस्टिंग्स द्वारा की गयी लूट ने इंगलैंडमें मजदूरीकी दर बढ़ा दी तो वह कोई दलील नहीं कि वैसी ही भारतमें मांग की जांय। आशाका संचार तभी हो सकता है, जब ग्राम-पंचायतोंकी स्थापना की जाये, भेदका अन्त कर संघ-भावना उत्पन्न की जाये, और जीवन-निर्वाहके साधन इस प्रकार बढ़ाये जायँ, जिससे भूखों मरते और नंग-धड़ंग लोगोंको काम दिया जा सके।

मेरी समझमें ग्रामोद्धारके लिये पहला काम यह है कि ऐसे कार्य-कर्त्ता ढूंढ़े जायँ, जो अनुग्रहकर्त्ता और बड़े आदमियोंके रूपमें काम न करें। वे गांवके लोगोंमें से एक होनेका अनुभव करें, गांववालोंके दुःखमें और बीमारीमें एक हों तथा सेवा और त्यागमें भी एक हों। आप गांवोंमें जानेपर किसीके घर अतिथि होते हैं, तो जिस स्थान पर ठहराये जाते हैं, वहां देखते हैं कि खपरैलमें जाला लगा है और नीचे जमीनमें जगह-जगह गड्ढे बन गये हैं, तो क्या कभी झाड़ू लेकर उस जालेको साफ कर देने और कुदाल लेकर उन गढ़ोंको बंद कर जमीनको समतल बना देनेकी बात भी कभी सोचते हैं? पास ही किसीके गिरते हुए खंभोंको आप बदलनेका प्रयत्न करते

हैं ? दूधके लिये रोते हुए बच्चेके लिये कभी आप दो आँसू बहाते और उसे खिलानेका प्रयत्न करते हैं ? कहनेका अभिप्राय यह कि क्या आप उन लोगोंकी सेवा करनेके लिये दौड़ते हैं, जो कष्टमें फँसे होते हैं और आपसे सहायता चाहते हैं ? यह तो सच है कि हम सभी लोग महात्मा गांधी नहीं बन सकते, लेकिन हमें अपनेको ऐसा भी नहीं समझना चाहिये कि हम स्वर्गसे चले आ रहे हैं इस पृथ्वी पर इसलिये कि गरीब और असहाय, भूखे और नंग-धड़ंग लोगों पर अनुग्रह प्रकट करें। फिर ग्रामोद्धारके लिये सहायक धंधोंकी आवश्यता है, जो गरीब मजदूरों और किसानोंकी अपर्याप्त मजूरीके सिवा कुछ अतिरिक्त आय करा सकें या उनके बेकारीके समयके लिये काम दे सकें। साग-सब्जी बोना, खेती, मधुमक्खी पालना, सूत कातना, बुनना, कागज बनाना, आटा पीसना आदि सैकड़ों प्रकारके धंधे ढूंढ़े जा सकते हैं, जो गरीबोंकी आवश्यकताकी पूर्त्ति कर सकें। किन्तु कसबे वालोंका कर्त्तव्य है कि वे कुर्सी की जगह दरी-गलीचा, लोहेकी कलमके स्थान पर नरकलकी कलम, विदेशी वस्त्रोंके स्थान पर खद्दरकी धोती और विदेशी खिलौनोंकी जगह देशमें बने खिलौने काममें लायें। गाँव संस्कृतिके केन्द्र, कलाके स्रोत और शिल्पके घर हैं और यदि शहरके लोगोंकी रुचि गाँवकी बनी चीजों को ग्रहण करनेकी न हो, तो उन्हें रेडियोसे तरह-तरहकी नसीहतकी बातें सुनानेसे क्या लाभ ?

समाजवादसे डरना क्यों ?
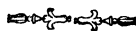
जो परिवर्त्तनसे डरता है, वह स्वभावतः या तो जड़वत् स्थिर रहने या पीछेकी ओर लौटनेमें संतुष्ट रहता है। परिवर्त्तन समयका नियम है। यदि सतयुगमें क्रय-विक्रय नहीं होता था, लाभ हानि नहीं थी, कोई न स्वामी था और न कोई सेवक, न कहीं गरीबी थी और न कहीं अमीरी, और उस आदर्श अवस्थासे अवनत होकर हम लोग आज इस अधोगति

को प्राप्त हुए हैं, तो क्या यह उचित प्रस्ताव न होगा कि जिस प्रकार हम लोग अब तक अवनत हुए हैं, वैसे ही एक दिन फिर सतयुगमें पहुंच जानेका गंभीरतासे प्रयत्न करें? इस तरहकी उन्नति और विकाश समाजवादकी ओर बढ़नेके सिवा और क्या है? समाजवाद शब्दके अभिप्रायको छोड़ लोगोंने इसका नाम ही अधिक बदनाम कर रखा है। कभी-कभी प्राचीन शब्दोंके रूपमें आधुनिक विचारोंकी व्याख्या करना आवश्यक होता है और नयेके प्रति हमारा विराग उस समय मिट सकता है, जब हम यह बात जान लें कि जिसे हम नया कहते हैं, वह वस्तुतः पुरानी और परिचित वस्तुओंका ही नामांतर है। इसलिये समाजवादसे न घृणा करनी चाहिये और न उससे डरना ही चाहिये। हिन्दुओंकी नित्यकी प्रार्थनामें 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' और 'सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु' कहा जाता है। इनका यही तो अर्थ है न कि सारी दुनिया सुखी हो और सभी लोग सुखी हों। विश्वबंधुत्वकी भावना, दूसरे मनुष्योंके कल्याणकी विशेष चिन्ता—इन बातोंसे ही हिन्दुओंका सामाजिक ढांचा परिचालित होता है और भारतीय समाजका आधार राष्ट्रीयताकी जगह समाजवाद ही है। इसलिये आज धन और प्रभुत्वकी तलाशमें समाज जैसी अधोगतिमें पहुंच गया है, उसे देख सुधारक अपने देशवासियोंको भूले हुए कर्त्तव्यकी याद दिलाते हैं, तो इससे हमें डर क्यों हो?

गांधीवाद और समाजवाद

जो समाजवाद कभी नास्तिकता समझा जाता था, वही पिछले कुछ वर्षोंके भीतर कितनी शीघ्रतासे फैला है, यह सभी लोग देख रहे हैं। इंग्लैण्डमें समाजवादका विचार एक उदार विचार रहा है, जो समाज और अर्थ-व्यवस्थाके पुराने आधार पर हावी होनेके बदले प्रायः खुद उसका विचार हो गया है। अंग्रेज समाज पर उसका प्रभाव पड़ा है

सही, पर अंग्रेजोंकी अर्थनीति अथवा उनके राजनीतिक सिद्धांत सम्पूर्णतः बदल गये हैं, यह कोई नहीं कहेगा। रूसमें समाजवादके सिद्धान्तों पर पूरी तरह अमल किया गया है, जिनके फल-स्वरूप वहाँ अवस्थाओंमें जो आकस्मिक और भारी परिवर्त्तन हुआ है, उसका प्रभाव ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी कर दी जानेपर भी संसारके कोने-कोनेमें पहुँच गया है। स्वयं बरटेंड रसलने माना है कि इंग्लैण्डमें समाजवादकी ओर झुकाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। समाजवादने शारीरिक श्रमकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है और उन लागोंके लिये बौद्धिक और राजनीतिक सुविधाएँ सुलभ कर दी हैं, जा अब तक दिल और दिमागसे शून्य केवल हाथसे श्रम करनेवाले मजदूर समझे जाते थे, पर इसके बाद उसकी गति रुक गयी। यह न तो बेकारोंको अधिक आशाका संदेश दे सका और न काममें लगे लोगोंको ज्यादा सुख पहुँचा सका। पश्चिममें राजकीय समाजवादका कितना झुकाव बढ़ रहा है, किन्तु तो भी केवल मालिक बदलते हैं, मजदूर तो फिर भी गुलामी ही करता है, पश्चिममें कुलीन लोगोंका एक छोटा वर्ग और आम लोगोंका एक बड़ा वर्ग अस्तित्व में आया है जरूर, पर ये दोनों हो पूंजीवादी और उद्योगवादी प्रणालीके एक ही चित्रके दो पहलू हैं। आर्थिक क्षेत्रमें घटनाक्रम और स्पष्ट है। वाष्प इंजिनके आविष्कार और चीजोंके उत्पादन एवं निर्माणमें बिजली के उपयोगके कारण पश्चिमी राष्ट्र व्यापार पर एकाधिकार जमाने, बाजार ढूंढ़ने, राष्ट्रोंको गुलाम बनाने और व्यापार तथा हथियारोंकी श्रेष्ठता द्वारा साम्राज्यवादी प्रणालीकी रचना करनेमें सबसे आगे बढ़ गये हैं। इसके फलस्वरूप उस प्रणालीका जन्म हुआ है, जिसमें धनीको और धनी बनाया जाता है और गरीबके पास जो थोड़ा-बहुत धन रहा हो, वह भी छीन लिया जाता है। इङ्गलैण्डने समयानुकूल रियायतें देकर समाजवादका मुकाबला किया है सही, पर उन रियायतोंकी सीमा पहुंच चुकी है। दूसरी ओर रूसने जारको सपरिवार समाप्त कर डाला, निजी सम्पत्ति और निजी व्यापार तो उठा दिया और अपनेको स्वावलम्बी

बनानेके उद्देश्यसे उद्योगवादको मिश्रित बुराइयाँ दूर करते हुए अपनाया है।

परन्तु पश्चिम और पूर्व यानी भारतकी परिस्थितियोंमें व्यापक और मौलिक भेद है। यहां, वहांका-सा उद्योगवाद नहीं है। यहांके सब शहरोंमें कल-कारखानोंसे सम्बन्धित जनसंख्या पन्द्रह लाख ही तो है, पैंतीस करोड़की उस आबादीमें नगण्य-सी है, जिसमेंसे नब्बे प्रतिशत खेतीपर निर्वाह करते हैं। जिनका भाग्य गांवोंसे बंधा हुआ है। सौभाग्यसे हम ऐसे सामाजिक और आर्थिक संगठनके धनी हैं, जिसके लिये पश्चिमी राष्ट्रोंको खोज करनी पड़ी और जिसने पुनरुद्धारके लिये उन्हें कठिनाईका सामना करना पड़ रहा है। हमारे यहाँ ज्ञान, कमानेका नहीं सेवाका साधन माना गया है और यह निर्देश है कि सम्पत्तिवाद ज्ञानवान लोगोंका निर्वाह करें। विद्याका दरिद्रतासे नाता जोड़ा गया है और धनको समाजमें दूसरा स्थान दिया गया है। समाजवाद केवल पैसेकी प्रधानताके विरुद्ध विद्रोह है, किन्तु जिस समाज-व्यवस्थामें पैसेको प्रधानता नहीं दी गई है, वहाँ इस विद्रोहकी क्या जरूरत रह जाती है ? पश्चिममें शक्ति और पैसा ही समाजके आधार हैं, जबकि हमारे यहाँ समाजके संगठनका आधार पैसा नहीं, सेवा है।

भारतमें गांधीजीने एक नये धर्मका विकास किया। उन्होंने अपने व्यक्तित्वमें किसान और जुलाहेके, ब्यापारी और व्यवसायीके, युद्ध करने वाले क्षत्रियके और अन्ततः लोक-सेवक गुणोंका एक साथ समावेश किया है। सेवा और प्रेमके द्वारा वे स्मृतिकर्त्ता और सूत्रकारके दर्जे तक पहुंच गये। गांधीजीने अनुभव किया कि आज चार वर्णोंका अस्तित्व नहीं रहा है, अतः वर्णोंको माननेवालोंको पवित्रता और संयमके सर्वोपरि सिद्धान्तोंका पालन करके उनकी पुनः स्थापना करनी चाहिये। वे एक बार फिर प्रेम और सेवाके आधारपर समाजकी पुनर्रचना चाहते थे। यदि समाजवादका उद्देश्य सबको समान सुविधाएँ देना है, तो गांधीवादका उद्देश्य यह है कि हरएक आदमी

अपने समय और सुविधाओंका उच्च उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये उपयोग करे। समाजवाद-पूंजी-कर, भारी अतिरिक्त आय कर, जब्ती और शक्ति द्वारा सम्पत्तिको स्थानच्युत करता है, तो गांधीवाद युगमें पुरानी परम्पराका आह्वान करता है, जिसने अमीरीके मुकाबलेमें निर्धनताको और धनके मुकाबलेमें ज्ञानको महत्त्व दिया है। समाजवादको यह दुःखद दृश्य देखना पड़ा कि उसके पुजारी अपने सिद्धान्तों और शक्तिको स्थिर रखनेके लिये तानाशाह बन गये। गांधीवाद स्वेच्छापूर्वक स्वार्थत्याग करनेमें विश्वास करता है। अधिकांश जनोंके लिये समाजवाद एक वृत्ति है, पर गांधीवाद कठोर सत्य है। समाजवाद दूसरोंको उपदेश देता है, किन्तु गांधीवाद हरएकको उसका कर्त्तव्य सुझाता है। समाजवाद घृणा और फूट द्वारा मानवताका प्रचार करना चाहता है, पर गांधीवाद मानव-सेवाके लिये घृणा और फूटका त्याग करता है। समाजवाद मजूरीका हिसाब रखता और प्रत्येकको राज्यके लिये श्रम करनेको विवश करता है, पर गांधीवाद इस बातकी श्रेष्ठता बताता है कि व्यक्तियोंके प्रत्येक समूहकी परम्पराके अनुसार उस समूहके प्रत्येक स्त्री-पुरुषको अपने और अपने परिवारके लिये काम करना चाहिये। समाजवाद ऐसे समाजमें, जहाँ परिवारके भीतर भी असमानताका बोलबाला है, सम्पतिका समान विभाजन करना चाहता है, पर गांधीवाद हिन्दुओंके उत्तराधिकार विषयक कानूनोंसे लाभ उठाता है, जिनके अनुसार सभी लड़के पिताकी सम्पत्तिके समान हकदार होते हैं और मुसलमानोंसे तो लड़कियोंको भी उचित हिस्सा मिलता है। समाजवाद पश्चिमकी समाज-व्यवस्थाके गोलमालका इलाज हो सकता है, किन्तु गांधीवाद समाजके ऐसे संगठन और कर्त्तव्योंको व्यक्त करता है, जिनकी ऋषियोंने हजारों वर्ष पहले रचना की थी और जिनको पुनः संगठित करनेका प्रयत्न गांधीजीने किया है। तभी तो गांधीजीने करांचीमें कहा था—"गांधी मर सकता है, किन्तु गांधीवाद अमर रहेगा।"

६९ वीं वर्षगांठ पर

२४ नवम्बर १९४८ को डा० पट्टाभि अड़सठ वर्षके पूरे हो गये। उनकी ६९ वीं वर्षगाँठके अवसरपर जब पत्र-प्रतिनिधिने उनसे पूछा कि क्या आपको अपने इस जन्म दिवसपर कुछ कहना है, तो उन्होंने विनोद-पूर्ण शब्दोंमें यह कहा—"जन्म दिवसका सम्बन्ध या तो स्त्रीसे होता है या संसारसे। मेरा प्रथम कोटिमें है। आज मेरा ६९ वां जन्म दिवस है। अब जब निर्वाचन समाप्त हो चुका है, तब अपनी अवस्था प्रकट कर देनेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है।"

डाक्टर साहबके मनोरंजक प्रश्न :

हालमें डा० पट्टाभिसे मिलनेके लिये एक सज्जन आये। उनके साथ उनकी स्त्रीकी छः बहनें भी थीं। आगन्तुक सज्जनने अपनी स्त्रीका परिचय देते हुए कहा—'ये मेरी स्त्रीकी छै सहोदर बहनें हैं, जो आपका दर्शन करना चाहती थीं।' डाक्टर साहबने सबका नम्बरबार नाम पूछते हुए जानना चाहा कि ये क्या पढ़ती हैं ? पढ़ाई पर कितना व्यय होता है ? उत्तर मिला, कुछ कालेजमें और कुछ मेडिकल कालेजमें। एक-एक पर क्रमशः फीस, पुस्तकें, यातायात, भोजन तथा अन्य खर्चे मिलाकर २००) रुपये प्रतिमासके लगभग खर्च होता है। डाक्टर साहबने पूछा, प्रत्येकके पास कितने जोड़ा जूता है और दाम क्या है ? उत्तर मिला, कमसे कम ६ जोड़े, दाम औसतन ७०)—८०) रुपये होंगे। साड़ियाँ, सलवारें कितनी तथा कितने दामकी होंगी ? यह सुन कर सब ठहाका मारकर हँस पड़ीं। डाक्टर साहबके इस प्रश्नसे तो और भी ठहाका मचा कि लिपस्टिक, पाउडरमें मासिक व्यय क्या होता है

शरणार्थियोंके प्रति वात्सल्य भाव

डा० पट्टाभि शरणार्थियोंकी गाथा सुनकर उनके दुःख निवारणके लिये यथायोग्य उपाय करानेके लिये पर्याप्त जागरुक दिखाई पड़ते हैं। आपने कई बार अधिकारियोंको डाँट-डपट कर शरणार्थियोंके कष्टको कम कराया है। गत वर्ष आप वर्त्तमान प्रवासमंत्री श्री मोहनलाल-सक्सेनाके साथ कुरुक्षेत्र पधारे। इन पंक्तियोंका लेखक भी उनके साथ था। आपने आदिसे अंत तक शरणार्थियोंके लिये की जानेवाली सारी सामग्रियोंको बड़ी बारीकीसे देखा। आप और श्री सक्सेनाजी हजारों शरणार्थियोंको आकाशके नीचे पड़े देख, उनके पास जा पहुँचे और सारी

करुण-कथा सुनी, कैंप कमान्डैंटको शीघ्र व्यवस्थाके लिये कहा, साथ ही दिल्ली आकर तत्कालीन अधिकारियोंका ध्यान शीघ्रातिशीघ्र टैन्ट लगवाने के लिये आकर्षित किया ।

आत्म-संयमका प्रयत्न

डा० पट्टाभि अपने खरेपन और स्पष्टवादिताके लिये प्रसिद्ध हैं, यही कारण है कि चोटीके नेताओंसे भी कभी न कभी उनकी झड़प हो चुकी है। परन्तु इधरके वर्षोंमें उनकी प्रकृतिमें एक परिवर्तन होता स्पष्ट दिखाई पड़ा है। यह आत्म-संयमके लिये उनका प्रयत्न है। एक बार डा० पट्टाभिने अपने एक मित्रसे बताया है कि उन्होंने अपने घरके लोगों और मित्रोंसे यह कह दिय है—जब दिखाई पड़े कि मुझे क्रोध आ रहा है, तो मुझे तुरन्त रोक दो।" इसलिये प्रायः ही समय-समय पर वे लोग ऐसा करके डाक्टर साहबको आपेसे बाहर होने से रोक देते देखे गये हैं।

परिवारिक जीवन

डा० पट्टाभिका वैवाहिक जीवन आनन्दमय है। पुत्र-पौत्रादिसे आप सम्पन्न हैं। नाती-पोते उनकी गोदमें उस वक्त भी खेलते देखे जाते हैं, जब बाबाके पास उनके कितने ही मिलनेवाले आये होते हैं। डा० पट्टाभिने अपने बच्चोंको स्कूलों, कालेजोंमें भेजकर नहीं पढ़ाया है। उनकी शिक्षा राष्ट्रीय स्कूलोंमें ही हुई है। जब वे किसीको भोजनके लिये निमंत्रित करते हैं, तो डाक्टर साहब अपने साथ बैठकर खानेवालेको परसी हुई चीजोंमेंसे कुछ छोड़ने नहीं देते हैं। उससे वे यही आशा करते हैं कि सब चीज खा लेगा। इस तरह वे निमंत्रित व्यक्तिको अपने घरमें चटोरपनमें दायित्वपूर्ण शासनके अभ्यासका अवसर देते हैं।

मुद्रक—उमादत्त शर्मा, रत्नाकर प्रेस, ११-ए, सैयदसाली लेन, कलकत्ता।